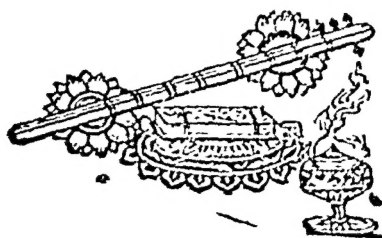


क्रमांक	विषय	पृष्ठांक
१६	देशावकाशिक व्रत	१४६
१७	पोषधोपवास व्रत	१४५
१८	देश पोषध	१५७
१९	पोषध में सामायिक करना या नहीं	१५८
२०	पोषध में लगने वाले दोष	१५९
२१	अतिथिसंविभाग व्रत	१६२
२२	उपासक प्रतिमा	१६९
२३	विशुद्ध प्रत्याख्यान	१७४
२४	श्रावक के मनोरथ	१७६
२५	श्रावक के विश्राम	१७८
२६	जैनधर्म का आस्तिकवाद	१८०
२७	आत्मा का अस्तित्व	१८२
२८	आत्मा शाश्वत है	१८८
२९	जीव कर्म का कर्त्ता है	१९३
३०	जीव कर्मफल का भोक्ता है	२००
३१	मुक्ति है	२२१
३२	आस्तिकता के विषय	२२९
३३	मुक्ति का उपाय है	२३४
३४	अनेकांत वाद	
	निक्षेप स्वरूप	
३५	नय स्वरूप	

क्रमांक	विषय	पृष्ठांक
५७	नियतिविजय को जड़न विषय	१९९
५८	प्रधानमन्त्री मोर पण्डितजी का विचार-संनिभ	१९९
५९	महाराज का निर्णय	२०१
६०	अपने विचार	२०३
६१	मनन्तानुबन्धी कथाय स्वरूप	२०९
६२	रघुनाथ पटेल की छाछ	२१६
	भगवान् का लोकोत्तर जीवन	२२५
	! भ. महावीर का धीतरागी व्यक्तित्व	२२९
	! सूत्रकार स्तुति	२३५



一、政治：政治是经济的集中表现，政治对经济有反作用。政治的进步或落后，对经济的发展有重大影响。政治的进步，可以促进经济的发展；政治的落后，可以阻碍经济的发展。政治的进步，可以促进经济的繁荣；政治的落后，可以导致经济的衰退。政治的进步，可以促进社会的稳定；政治的落后，可以导致社会的动乱。政治的进步，可以促进国家的统一；政治的落后，可以导致国家的分裂。政治的进步，可以促进民族的团结；政治的落后，可以导致民族的分裂。政治的进步，可以促进国际的和平；政治的落后，可以导致国际的战争。政治的进步，可以促进人类的进步；政治的落后，可以导致人类的倒退。政治的进步，可以促进文明的进步；政治的落后，可以导致文明的倒退。政治的进步，可以促进人类的幸福；政治的落后，可以导致人类的痛苦。政治的进步，可以促进人类的自由；政治的落后，可以导致人类的压迫。政治的进步，可以促进人类的平等；政治的落后，可以导致人类的不平等。政治的进步，可以促进人类的和谐；政治的落后，可以导致人类的冲突。政治的进步，可以促进人类的进步；政治的落后，可以导致人类的倒退。政治的进步，可以促进人类的幸福；政治的落后，可以导致人类的痛苦。政治的进步，可以促进人类的自由；政治的落后，可以导致人类的压迫。政治的进步，可以促进人类的平等；政治的落后，可以导致人类的不平等。政治的进步，可以促进人类的和谐；政治的落后，可以导致人类的冲突。

[illegible]

W.R. 550

[Faint handwritten notes]

10

r l

काँई सोना चाँदी एवं रत्नादि बहुमूल्य वस्तु खरीदना चाहे, तो विश्वसनीय जोहरी के पास जाता है। वह दूसरों से पूछता है कि—“ऐसा विश्वसनीय जोहरी कौन है कि जिससे



जिसमें सम्यग्ज्ञान ही नहीं, उसका तो कहना ही क्या है ? अन्य मत के उपास्य देवों में सम्यग्ज्ञान होता ही नहीं । अतएव उनका कथन सत्य नहीं हो सकता । तात्त्विक विषयों में तो वे अज्ञानी होते ही हैं । जहाँ अज्ञान का दोष है, वहाँ अन्य दोषों का सद्भाव भी होता ही है ।

जिनेश्वर भगवन्त ने अपनी पवित्र साधना से, सात्मा के पूर्ण ज्ञान की अवलम्ब करने वाले समस्त आवरणों की नष्ट करके सर्वज्ञ-सर्वदर्शिता प्राप्त कर ली । उनसे संसार की कोई भी वस्तु छिपी नहीं रहो—चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म, वर्तमान की हो या भूत-भविष्य काल की । वस्तु का अत्यन्त गुप्त सूक्ष्मतम अंश भी भगवान् से छुपा नहीं रहा । इसका प्रमाण हमारे सामने है ।

जिनेश्वर भगवन्त ने वाणी से बोले जाने वाले शब्द को रूपी एवं ग्रहण होने योग्य बनलाया है । शब्द को वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शयुक्त होने तथा वज्राकार प्राकृति होना, मित्राय जिनेश्वर भगवन्तों के ओर किमने बताई ? एकमात्र जिनेश्वर भगवन्त ही ऐसे हैं जिन्होंने भाषा को पुद्गलमय वर्णमन्त्रादि युक्त और निकलते ही लोकान्त तक पहुँचने वाली बनलाया है । भाषा के पुद्गल अनन्त-प्रदेशों (अनन्त परमाणुओं के युक्त) और अमंजस नमय की स्थिति वाले बनलाये हैं । यह भी बताया है कि भाषा के पुद्गल मूँह से निकलने के बाद अक्षर-रूपी अनन्त गुण वृद्धि वाले रूप लोकान्त तक पहुँचने हैं ।

(प्रज्ञापना सूत्र पद ११)

ज्ञान-गुण सम्पन्न हैं। उनमें अज्ञान का रंघ मात्र भी दोष नहीं होता। जो पूर्ण ज्ञानी होता है, वही सच्चा तत्त्व-प्रकाशक हो सकता है। अन्य तत्त्वनिरूपकों के कथन में असत्य का अंश होना सर्वथा सम्भव है। अतएव आराध्य देव वही हो सकता है कि जिसमें अज्ञान-दोष का लेशमात्र भी नहीं हो। जिनेश्वर भगवन्त पूर्णज्ञानी थे। उनमें अज्ञान-दोष था ही नहीं। वे सर्वथा निर्दोष थे।

२ मिथ्यात्व दोष—ज्ञान के अभाव में मिथ्यात्व तो होता ही है। जहाँ तत्त्वों का सम्यग्ज्ञान नहीं, वहाँ सम्यग्दर्शन भी नहीं होता। मिथ्यात्व ही के प्रभाव से जाँव पाप को पुण्य और पुण्य को पाप, अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म मानता है। स्यावरकाय जीवों को अजीव और अजीव को जीव, आत्तव को संवर और संवर को आत्तव, बन्ध को निर्जरा और निर्जरा को बन्ध, तथा मुक्ति को संसार और संसार को मुक्ति मानता है। निर्दोष संयम-तप को साधना को 'जड़क्रिया' और साधक को 'क्रियाजड़' कहता है। मिथ्यात्व ऐसा विष है, जिससे आत्मा के ज्ञान-दर्शनादि गुण विकृत हो जाते हैं। जिस प्रकार कांस्य-पात्र में रखा हुआ दही विपैला हो जाता है, ताम्र-पात्र में रखा हुआ दूध-दही और घृत स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है, इसी प्रकार जहाँ मिथ्यात्व है, वही सामान्य ज्ञान भी नहीं रहता, तब धर्म-प्रकाशक देवत्व तो रहे ही कैसे? अन्य देवों में मिथ्यात्व का सद्भाव बताने वाले

[illegible]

一、關於教育：教育為救國之根本，應以普及教育為宗旨，並注重職業教育與體育之發展。
 二、關於經濟：應發展實業，增加生產，以改善民生，並加強金融管理，穩定物價。
 三、關於政治：應加強法治，提高行政效率，並推行地方自治，以鞏固國家基礎。
 四、關於文化：應弘揚民族文化，吸收外國長處，並加強社會教育，提高國民素質。
 五、關於外交：應奉行獨立自主之原則，與各國建立友好關係，以維護國家主權。

[illegible]

पूर्व ही उस पवित्र आत्मा में मे काम-निकार का बीजांश-
वेदोदय—समाप्त हो जाता है । अतएव भगवान् में काम शो
भी नहीं होता । वे पूर्णतया निष्काम होते हैं ।

५ हास्य दोष—जिनेश्वर भगवंत में हास्य
नहीं होता । मनुष्य हँसता है—मोहनीय और ज्ञानावरण
कर्म के उदय से । कोई ऐसी बात देखने-सुनने या जानने
आवे जो तत्काल हँसी उत्पन्न कर दे । जिसे सुन कर उ
मनुष्य के मन में भी हँसी उत्पन्न हो जाय । यह बात या ता
पहले उसके जानने में नहीं आई हो । यदि पहले सुनी देखी हो,
तो भी विस्मरण हो गया हो, और हँसी उभाड़ने के कलापूर्ण ढंग
से प्रस्तुत हुई हो, तो हँसी आना स्वभाविक है । मोहनीय कर्म
की अठारह प्रकृतियों में से हास्य भी एक प्रकृति है । परम
वीतराग सर्वज्ञ-सर्वदर्शी को हँसी आती ही नहीं । वे भूत ओ
भविष्य के सम्पूर्ण ज्ञाता होते हैं । उनसे कोई भी रहस्य छिप
नहीं है । अतएव उनको हँसी आने का कोई कारण भी ना
है । जो हँसता है, वह मोही है और छद्मस्थ है । जिनेतर दे
में यह दोष उनके चरित्र से स्पष्ट होता है । किन्तु जिनेश
भगवंत इस दोष से सर्वथा मुक्त हैं ।

६ रति दोष—मनानुकूल विषयों के प्राप्त ह
पर प्रसन्न होना, सुखानुभव करना, इच्छित वस्तु की प्रा
पर तुष्ट होना । भक्तों द्वारा प्राप्त पूजा-सत्कार से संत
होना । शब्दादि भौतिक सुखद विषयों में आसक्ति-अनुरा

中國經濟史綱 第一章 緒論 第一節 經濟史之定義

經濟史之定義 經濟史者，研究人類經濟生活之變遷及其原因之學也。其範圍包括農業、工業、商業、交通、貨幣、稅收、社會福利等。經濟史之研究，旨在揭示經濟發展之規律，為現代經濟建設提供借鑒。

經濟史之重要性 經濟史之研究，對於了解人類社會之演進，具有極高之價值。通過研究經濟史，我們可以瞭解不同時期之經濟結構、生產力水平及社會制度之變遷，從而為現代經濟之發展提供歷史依據。

經濟史之研究對象 經濟史之研究對象，為人類之經濟生活。其內容包括生產、分配、交換及消費等各個環節，以及經濟與政治、文化之相互影響。

經濟史之研究方法 經濟史之研究方法，包括文獻研究、考古學研究、統計學研究等。通過多種方法之綜合運用，可以更全面、更準確地揭示經濟史之真相。

經濟史之研究意義 經濟史之研究，不僅具有學術價值，更具有現實意義。通過研究經濟史，我們可以瞭解經濟發展之規律，為現代經濟之改革與發展提供借鑒與指導。

होना अथवा प्रकाश ही भयप्रद निम्न उत्पन्न होना ।

आजीविका भय—जीविका के माध्यम विनष्ट होने का भय । अथवा वेदना भय—रोग से उत्पन्न दुःख । इसके प्रतिकार के लिए इन्जोशन आपरेशन आदि से भयभीत होना ।

अपयश भय—अपयश, बदनामी, प्रतिष्ठा में होने वाला हानि का भय । ६।

मृत्यु भय—मरने का डर । ७।

भयभीत होने वाली आत्मा अशक्त होती है । उस मन में धन, कुटुम्ब, शरीर आदि के प्रति मोह होता है । इस उनकी अरक्षा का डर बना रहता है । अन्य देवों के हाथ शस्त्र होने का कारण भय ही है । श्रीजिनेश्वर भगवंत प्रकार के भय से रहित—निर्भय होते हैं ।

१० जुगुप्सा दोष—बीभत्स्य दृश्यों, विष दुर्गन्धी वस्तुओं, कणकट शब्दों, स्वादहीन अथवा अप्रिय खाले खान-पान, असह्य स्पर्शादि से घृणा होना । अन्य देव दोष से मुक्त नहीं थे । जिनेश्वर भगवंत में यह दोष भी होता ।

११ राग दोष—प्रिय वस्तु पर राग—स्नेह हे भवतों पर अनुराग कर के उन्हें वरदान देना, उनका इत्थि कार्य करना आदि राग-दोष है । क्रोध और मान कषाय, के अन्तर्गत है । जिनेश्वर भगवंत इस राग—स्नेह—प्रेम से सर्वथा वंचित हैं ।

（一）
（二）
（三）
（四）
（五）
（六）
（七）
（八）
（九）
（十）
（十一）
（十二）
（十三）
（十四）
（十五）
（十六）
（十七）
（十八）
（十九）
（二十）
（二十一）
（二十二）
（二十三）
（二十四）
（二十五）
（二十六）
（二十七）
（二十八）
（二十九）
（三十）
（三十一）
（三十二）
（三十三）
（三十四）
（三十五）
（三十六）
（三十七）
（三十八）
（三十九）
（四十）
（四十一）
（四十二）
（四十三）
（四十四）
（四十五）
（四十六）
（四十七）
（四十八）
（四十九）
（五十）
（五十一）
（五十二）
（五十三）
（五十四）
（五十五）
（五十六）
（五十七）
（五十八）
（五十九）
（六十）
（六十一）
（六十二）
（六十三）
（六十四）
（六十五）
（六十六）
（六十七）
（六十八）
（六十九）
（七十）
（七十一）
（七十二）
（七十三）
（七十四）
（七十五）
（七十六）
（七十七）
（七十八）
（七十九）
（八十）
（八十一）
（八十二）
（八十三）
（八十四）
（八十五）
（八十六）
（八十七）
（八十八）
（八十九）
（九十）
（九十一）
（九十二）
（九十三）
（九十四）
（九十五）
（九十六）
（九十七）
（九十八）
（九十九）
（一百）

कर मनुष्य हमारे अविज्ञानी में जाता है और उसमें गुरुत्व होने के लिये विविध प्रकार के शस्त्र धारण करता है। उन्हीं शस्त्रों में होते हैं, जिन्हें वे मारते हैं। यह स्थिति भौतिक-लगाव के कारण होती है। पुद्गलानन्दीपन के कारण ऐसी स्थिति बनती है और यह दशा जिनके देवों के चरित्रों में स्पष्ट दिखाई देती है।

वीर्य—शक्ति तीन प्रकार की है—१ बाल-वीर्य २ पण्डित-वीर्य और ३ बाल-पण्डित-वीर्य।

वीर्यान्तराय का अर्थ है—शक्ति का प्रवरोध। अन्तराय के क्षयोपशम से शक्ति का कुछ विकास होता है और क्षय में होता है—परिपूर्ण विकास।

बालवीर्य का अर्थ है—आरम्भ-परिग्रह विषयविकार और कषाय पर कुछ भी आत्म-नियन्त्रण नहीं रखने वाला अविरत जीव। प्रथम गुणस्थान से लगा कर चतुर्थ गुणस्थान तक के सभी अविरत जीव 'बालजीव' है।

पण्डित-वीर्य—आरम्भ-परिग्रह, विषय-विकार और अठारह पाप के त्यागी सर्वविरत साधु-साध्वी। गुणस्थान १ से १४ पर्यन्त चारित्र्य-सम्पन्न।

बाल-पण्डितवीर्य—आरम्भ-परिग्रहादि के अंश रूप में त्यागी। पंचम गुणस्थानी देश-विरत श्रावक।

उपरोक्त तीनों भेद विरति की अपेक्षा से है, शारीरिक श्रयवा आर्थिक सम्पन्नता की अपेक्षा से नहीं। भौतिक अपेक्षा तो कई बालवीर्य वाले भी शेष दो से बढ़-चढ़ कर होते हैं

“उमगओ विमलौ भागू, सखओपणमं करौ” (भा. ७६) तथा—“सखणू निणमणवरौ” (भा. ७७)

किन्तु सूर्य की उमगा भी एकदशाव है। यदा सूर्य अपने प्रभावक्षेत्र को प्रकाशित करता है, परन्तु उमगा प्रकाश भी आवरण से रूकता है और वस्तु की ऊपरी सतह को ही प्रकाशित करता है। सूर्य के प्रकाश से प्रभाषित भाग बहुत बड़ा है और सूर्य तो अस्त भी होता है, बादल उन रूक देता है और ग्रहण लग कर बदरंग कर देता है। किन्तु केवलज्ञान ने प्रकाशित कोई वस्तु और उसको कोई भी पर्याय नहीं रहता। केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद सदा स्थायी—अपरिवर्तिन रहता

[illegible][illegible]

一、諸君欲求其學之進步，必先求其心之進步。心之進步，在於其能於事物之理，而得其所以然之故。此理之得，非由外而內，乃由內而外。故欲求其心之進步，必先求其心之虛靜。心之虛靜，則理之得，自然矣。此理之得，非由外而內，乃由內而外。故欲求其心之進步，必先求其心之虛靜。心之虛靜，則理之得，自然矣。

一、論理學之研究，不外乎對於事實之觀察與分析。事實之觀察，須以客觀之態度，而不受主觀之影響。分析之方法，則有歸納與演繹之別。歸納法，由個別事實而推求一般原理；演繹法，由一般原理而推求個別事實。二者相輔相成，不可偏廢。

[illegible][illegible]

थे। उनका चारित्र्य उत्तम था और वे निरन्तर बेंके-बेंके तपस्या करते रहते थे। उनकी छोटी-सी भूख के लिए आनन्द नामक श्रावक के पास (जो श्री गौतमस्वामी को गुरुनीय वन्दनीय एवं पूज्य मानता था) अपनी भूल सुधारने का क्षमा-याचना करने भेजा। भगवान् के मन में अपने प्रशिष्य एवं प्रथम गणधर के प्रति रागभाव होता, तो बेंके तप के पारण के लिये लाये हुए माहार को यों ही धरा रहने कर आनन्द श्रावक को खमाने नहीं भेजते। कम से कम यह कहते ही कि—“अरे गौतम ! तू बेंके का पारणा पहले ले, फिर खमाने जाना,” अथवा “यहीं से खमा ले।”

गोशालक ने भगवान् महावीर प्रभु के दो शिष्यों जला कर भस्म कर दिया और भगवान् पर भी तेजोलिप्या छे थी। प्रभु को छह मास तक व्याधि रही, परन्तु भगवान् मन में गोशालक पर तनिक भी रोष नहीं आया। भगवान् श्री गौतमस्वामी आदि अनेक ऐसे शक्तिशाली शिष्य थे गोशालक को क्षणमात्र में राक्ष का ढेर बना सकते थे। पर भगवान् की शिक्षा के अनुसार सभी शान्त एवं समभावयुक्त रहे। ये उदाहरण उनकी परम धीतरागता के प्रक प्रमाण है।

संसार में अनादि-काल से जन्म-मरण, रोग-शोक, विष-गादि दुःख सहते और रखड़ते-भटकते हुए जीव को शाश्वत अनन्त सुखों का मार्ग बताने वाला यदि संसार में कोई है, त

ऐसे अरिहंत भगवान् प्रथम तत्त्व के रूप में हमारे लिए परम आराध्य हैं। इन्हीं से धर्म की उत्पत्ति होती है। इन्हीं के बताये मार्ग पर साधु, साध्वी, आचक और आधिका रूप चतुर्विध संघ चल कर अपना आत्म-कल्याण करते हैं। इन्हीं के उपदेश का संकलन कर के गणधर भगवंत आगमों की रचना करते हैं, और आचार्य उपाध्याय एवं साधु-साध्वी इन्हीं आगमों के अनुसार हमें उपदेश देते हैं।

ऐसे परम आराध्य अरिहंत भगवतों के चरणों में हमारी बारबार वन्दना है।

हम कितने भाग्यशाली हैं कि एक दरिद्र को अनमोल रत्न मिलने के समान हमें अनायास ही जिनेश्वर देव का परम पावन धर्म-रत्न मिला है। हमारा जन्म जैनकुल में हुआ और अरिहंत भगवंत जैसे सर्व श्रेष्ठ देव-तत्त्व की आराधना का उत्तम अवसर मिला है। इस उत्तम अवसर को भौतिक चका-चाँद और कुतर्कियों के मायाजाल में उलझ कर खो नहीं देना चाहिये। जिस प्रकार रत्नादि सम्पत्ति को लूटने वाले चोर-लुटेरे बहुत होते हैं, उसी प्रकार धर्म-धन को लूट कर हमें जिनधर्म से वंचित करने वाले, भौतिकवाद में उलझे हुए मिथ्या-दृष्टि कई हैं। उनसे सावधान रहना चाहिए।

गुरु तत्त्व

देव-तत्त्व धर्मरूपी कल्पवृक्ष का मूल है और गुरु-तत्त्व उसकी शाखा-प्रशाखा है। भरत-क्षेत्र में इस काल में देव-तत्त्व

से प्राप्त हुआ है। उस पद पर रहे हुए पाचों तर्कों, पुरुष-पद पर सुशोभित हैं।

प्राचार्य भगवंत के बाद उपाध्याय भगवंत महामन्त्र के चौथे पद पर आसीन थे। वे अज्ञान के नाशक, बहुभूत एवं गीतायें होते हैं। साधु-गाधियों को अज्ञान का अन्धकार हराना उनका मुख्य कार्य है। ये महत्तमा भी हमारे गुरुपद पर हैं।

महामन्त्र के पाँचवें पद के स्वामी सर्वत्यागी अमण-निग्रय भी गुरु-पद के धारक हैं।

पाँच महाव्रत और पच्चीस भावनाओं से युक्त, रात्रि-भोजन का सर्वथा त्याग, पाँच समिति तीन गुप्ति के पालक, नववाङ्मयुक्त ब्रह्मचर्य के धारक और सत्तरह प्रकार के संयम का पालन करने वाले होते हैं। संयम के सत्तरह प्रकार ये हैं; —

१-९ पृथिवीकायादि पाँच स्थावर, वेदद्रियादि चार त्रस, ये ९ जीवकाय की यतना करना, इन्हें किसी प्रकार का क्लेश एवं खेद नहीं पहुँचाना।

१० अजीवकाय संयम—वस्त्रादि उपकरण बहुमूल्य नहीं लेना, आवश्यक उपधि से विशेष नहीं रखना, वस्त्रादि पर मूच्छा नहीं रखना।

११ प्रेक्षा संयम—चलते-फिरते, सोते-बैठते, वस्त्रादि उठाते-रखते सावधानी पूर्वक देखना।

१२ उपेक्षा संयम—असंयम के कार्यों में उपेक्षा करना,

सत्पुरुष पर कुछ हद विचार नहीं करता ।

साधु जीवन को शुद्ध निर्मल एवं पूर्ण संयमी एवं उन्नत बनाने के लिये आत्मों में जो विधि बताई है, अद्वितीय है । अन्य किसी भी मत के आत्मों में इस प्रकार की विधि नहीं दिखाई देगी । परमेष्ठी महामन्त्र के आराध्य पर पर स्थित महान् साधक तभी बन सकते हैं जब कि वे प्रपन्न ध्येय और आचार शुद्ध रहें और सभी दोषों से अचल हुए आत्मा को विशुद्ध बनाने में ही लगे रहें ।

अनगार-धर्म ही ऐसा है जो समस्त पापों से मुक्त हो कर संवर-निजंरा रूप धर्म का पालन पूर्ण रूप से करता हुआ निरन्तर मोक्ष की ओर गति करता रहता है । चाहे सामान्य साधु हो, या आचार्य-उपाध्याय, साधुता के गुण तो सभी होना ही चाहिये, तभी वह वास्तव में श्रमण-निग्रन्थ होता है और तभी परमेष्ठी महामन्त्र में स्थान पा सकता है ।

साधु का बहुत पढ़ा-लिखा एवं उपदेष्टा होना अनिवार्य नहीं है, परन्तु आचार-विचार का निर्मल होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है । और उपाध्याय एवं आचार्य-पद के स्वामी का तो श्रुतधर-अर्थधर एवं विद्वान् उपदेष्टा होना अनिवार्य है । आचार-विचार के साथ आगमों का ज्ञाता हो तभी आचार्य-उपाध्याय हो सकता है । स्व-सिद्धांत के साथ पर-सिद्धांत का ज्ञाता हो, प्रभावशाली हो, धीरवीर, गम्भीर, सहनशील आचार्य, उपाध्याय, गणि, गणावच्छेदक महात्मा भी

आत्म-शुद्धि का मूल--तत्त्वत्रयी

- ८ तप--इच्छानिरोध रूप तप सदैव करते रहना।
 - ९ त्याग--परिग्रह का त्याग करना। भौतिक इच्छा ममत्व छोड़ना।
 - १० ब्रह्मचर्य--विषय-वासना का त्याग कर नौ वा युक्त ब्रह्मचर्य का पालन करना।
- उपरोक्त श्रमण-धर्म का पालन करने वाले साधु साध्वियों के श्रमण-जीवन में परीपह--कठिनाइयाँ, विपत्तियाँ आती रहती है। वे परीपह ये हैं;—

परीपह-जय

निर्ग्रन्थ-जीवन सुखशीलियापन का नहीं है। वह आराम तलबी से विमुख हो कर आत्मा की स्वतन्त्रता के लिए जूझने का जीवन है। यह युद्ध दो आत्माओं का नहीं, किन्तु आत्मा और अनात्मा का युद्ध है। अनात्मा (जड़) के संयोग से आत्मपराधीनता के अनन्त बन्धनों में बन्धा हुआ है। सम्पद्दर्शन रूपा प्रकाश ने आत्म-मान जगा दिया। आत्मा को अपनी अवस्था का भान हुआ। अब वह जड़ का बन्दी रहना नहीं चाहता। ऐसे जाग्रत और सावधान बने हुए आत्मा ने पहले तो अपने बाह्य बन्धन तोड़े अर्थात् धन-सम्पत्ति और कुटुम्ब-परिवार रूप मंसार से स्वतन्त्र हुआ। अब उसे आभ्यन्तर बन्धन तोड़ना है। पाँच शरीर रूप बन्धन को तोड़ कर उसे सर्वथा स्वतन्त्र होना है।

राह चलते मिथ्यारी की साम्राज्य का अधिपत्य मिलना

[illegible][illegible]

廣西王明道先生詩集卷之六

第 11 章 数据库系统

[illegible][illegible][illegible]

陳 誠 蔣 經 國 鄧 小平 李 登 輝 楊 金 華 李 登 輝 楊 金 華

[illegible]

卷之六
 卷之六
 卷之六
 卷之六
 卷之六
 卷之六

[illegible]

५५ का मूड—नर नयों

उन्हें निवारण भी नहीं करना ।

६ अनेक—आवश्यक वस्तुओं के नहीं मिलने पर हों
वाला कष्ट सहना । वस्तु फट गये हों, गल गये हों और मर्यादा
नुसार निर्दोष वस्तु नहीं मिले, तो खीनता नहीं लाना ।

७ अरति—प्रावश्यक आहारादि प्राप्त नहीं होने पर
मन में खेद नहीं करना । विहार से थकने पर ग्लानि का
अनुभव नहीं करना, किन्तु धर्म में विशेष सावधान होना ।

८ स्त्री—साधुओं का स्त्रियों (साध्वियों की अपेक्षा
पुरुषों) की ओर आकर्षित होना अनिष्टकर है । इसलिए स्त्रियों
के रूप आदि अनुकूल—लुभावने विषयों की ओर आकर्षित
नहीं होना और स्त्री मोहित करना चाहे, तो उसके कष्ट सह
करते हुए वच कर रहना । (अन्य परोपह प्रतिकूल हैं, तब यह
अनुकूल है)

९ चर्या—पाद-विहार (चलने) से होने वाला कष्ट

१० निपट्या—स्वाध्याय-भूमि या कहीं ठहरने के स्थान
पर बैठने की जगह अनुकूल नहीं मिल कर विषम अथवा भय-
कारक मिले, इससे होता हुआ दुःख ।

११ शय्या—अनुकूल मकान नहीं मिलने से होने वाला
कष्ट ।

१२ आकोश—कोई गाली दे, घमकावे, दुर्वचन बोले
और अपमानित करे तो सहन करने रूप ।

१३ वध—कोई मारे पीटे, अंग-भंग करे, तो "आत्मा

उमें नाहे नहीं । पूजा-मरहार की इज्जत नहीं करे । यदि जो सत्कार नहीं करे, गन्दना-नमस्कार नहीं करे, तो सिद्ध नहीं होवे (यह भी अनुकूल परीपद है) ।

२० प्रज्ञा—बहुश्रुत ग्रन्थों की भाँति साधु से बहुत लोग पूछते हैं । कई विवाद करने की भी आते हैं । इससे सि हो कर यह नहीं सोच कि 'इससे तो अज्ञानी रहना अच्छा जिससे कोई पूछे तो नहीं,'—इस प्रकार रोदित नहीं हो शान्ति से सहन करना ।

२१ अज्ञान—परिश्रम करने पर भी पाठ याद नहीं हो ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो, तो अपने प्रज्ञान (विशेष ज्ञान की होने) पर खेद नहीं करे और तपस्या आदि में विशेष प्रयत्न शील बने ।

२२ दर्शन—दूसरे मतावलम्बियों के सिद्धांत, उन ऋद्धि, महत्ता, अधिक मान्यता, बड़े-बड़े अनुयायी तथा उनका प्रभाव देख कर शंका-कांक्षादि नहीं लाना । भौतिकवादी, चार्वाक आदि की मान्यता सुन कर यह विचार नहीं करना कि 'परलोक है या नहीं, जिनेश्वर हुए हैं या नहीं, मुक्ति है या सब झूठा वकवाद है । संयम और तप का फल मिलेगा या नहीं'—इस प्रकार शुद्ध श्रद्धा से विचलित करने वाले विचार नहीं कर के शान्ति से सहन करते हुए 'श्रद्धा को परम दुर्लभ' मान कर दृढ़ रहना ।

इन सभी परीपदों को सहन करते हुए संयम-यात्रा में

उसे चाहे नहीं। पूजा-सत्कार की इच्छा नहीं करे। यदि कों सत्कार नहीं करे, वन्दना-नमस्कार नहीं करे, तो विघ्न न होवे (यह भी अनुकूल परीपह है)।

२० प्रज्ञा—बहुश्रुत अथवा गीतार्थ साधु से बहुतन लोग पूछते हैं। कई विवाद करने को भी आते हैं। इससे खि हो कर यह नहीं सोचे कि 'इससे तो अज्ञानी रहना अच्छा है जिससे कोई पूछे तो नहीं,'—इस प्रकार खेदित नहीं हो का शान्ति से सहन करना।

२१ अज्ञान—परिश्रम करने पर भी पाठ याद नहीं हो, ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो, तो अपने अज्ञान (विशेष ज्ञान नहीं होने) पर खेद नहीं करे और तपस्या आदि में विशेष प्रयत्न शील बने।

२२ दर्शन—दूसरे मतान्वलम्बियों के सिद्धांत, उनकी कृद्धि, महत्ता, अधिक मान्यता, बड़े-बड़े अनुयायी तथा उनकी प्रभाव देख कर शंका-कांक्षादि नहीं लाना। 'भौतिकवादी, चार्वाक आदि को मान्यता मुन कर यह विचार नहीं करना कि 'परलोक है या नहीं, जिनेश्वर दुष्ट हैं या नहीं, मुक्ति है या नहीं'—इस प्रकार शुद्ध अज्ञान से विचित्र करने वाले विचार नहीं कर के शान्ति से गहन करने दुष्ट 'अज्ञान को परम दुर्लभ' मान कर दुष्ट रहना।

इस सभी परीपहों को गहन करने दुष्ट गंयम-यात्रा में

आदि का उपयोग करना ।

२३ शय्यातर पिंड—साधु-साध्वी को ठहरने के नि-
मकान देने वाले—शय्यातर के घर का आहारादि लेना ।

२४ आसंसी—बैठ आदि से बने कुर्सी आदि आदि
पर बैठना ।

२५ पर्यंक—फलंग, खाट, मंचक आदि का उपयोग
करना ।

२६ गृहान्तर-निषद्या—गृहस्थ के घर रोगादि कारण
के बिना ही बैठना ।

२७ गाय-उद्धतन—शरीर पर पीठी आदि का
उबटन करना ।

२८ गृही वैयावृत्य—गृहस्थ की सेवा करना और
गृहस्थ से सेवा करवाना ।

२९ जाति आजीव-वृत्ति—जाति-कुल आदि बताने
सम्बन्ध जोड़ कर आजीविका करना ।

३० तप्तानिर्वृत भोजित्व—पूर्ण निर्जीव नहीं बने ।
मिश्र पानी का सेवन करना ।

३१ आतुर स्मरण—क्षुधादि से आतुर बन कर अपने
पूरे के गृहस्थ जीवन को याद करना ।

३२ मूल—सचित्त मूल का सेवन करना ।

३३ शृंगवेर—श्रद्धा का सेवन करना ।

३४ दशुधुं—गन्ध के टुकड़ों का सेवन करना ।

（此處有模糊不清之文字，疑為序言或引言部分）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第一段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第二段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第三段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第四段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第五段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第六段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第七段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第八段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第九段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十一段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十二段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十三段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十四段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十五段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十六段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十七段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十八段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十九段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第二十段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第二十一段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第二十二段）

५१ मायाभ्यंग—शरीर पर तेल की मालिश करना
 ५२ विभूषण—वस्त्रादि से शरीर सुशोभित करना
 उपरोक्त वाचन अनाचारों-दुराचारों को टालने का
 सुसाधु होते हैं। उनकी साधुता निर्दोष होती है। वे बन्धनों
 पूजनीय होते हैं। मुनिवरों का जीवन सीधा-सादा और
 आत्माभिमुख होता है। वास्तविक श्रमण मुखशीलिये, जिन्हें
 लोलुप, दैहिकदृष्टि वाले और विभूषणवादी नहीं होते।
 उपरोक्त अनाचारों से बचते हैं।

नियन्त्रण-दीक्षा ग्रहण करने वाली भव्यात्मा "यस्य
 कुटुम्ब-परिवार, धन-दौलत और सभी प्रकार के सांसारिक
 सम्बन्ध तोड़ कर उस साधना में प्रविष्ट होती है, जिसका
 संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वे संसार और संसार
 के सभी प्रपञ्चों और वाद-विवादों से पृथक् रहते हैं। उन
 उनकी साधना से सम्बन्ध रहता है। शरीर-निर्वाह के लिए
 आवश्यक आहारादि की याचना करने के लिए वे गृहस्थ
 पास जाते हैं और शारिरिक आवश्यकता पूर्ण कर अपनी साधना
 में लग जाते हैं। उनका ध्येय अनादि से लगे हुए कर्म-मल को
 नष्ट कर जन्म-मरण के कारणों से अपने को मुक्त कर
 परमात्म पद प्राप्त करने का है। साधक समझ चुका है कि—

"यह संसार रूपी समुद्र महान् भयंकर है। इसमें जन्म
 जरा और मृत्यु रूप महान् दुःखों से भरा हुआ क्षुब्ध और
 अथाह पानी है। विविध प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल संयोग

ही है। सभी प्राणी संसार में दुःख भोग रहे हैं—

“अहो दुःखो ह्यु संसारो, जस्य कीसंति जंतवो”

(उत्तराध्यायन ११)

किसी भव्यात्मा ने संसार को अग्निह्वय मान कर सोचा,—

“यह संसार जल रहा है। इसकी ज्वालाएँ फैल रही हैं। जिस प्रकार जलते हुए घर में से असार वस्तु छोड़ कर सार वस्तु निकालने वाला बुद्धिमान् है, उसी प्रकार अपनी आत्मा को बचाने वाला समझदार है।” (भगवती २-१)

इस प्रकार संसार को दुःख का महासागर मान कर, इससे मुक्त होने के लिए निर्ग्रन्थ-महात्मा जैन-प्रव्रज्या अंगीकार करते हैं। यद्यपि वे अपने शरीर को आत्मा के लिए बन्धन न मानते हैं, तथापि धर्म की आराधना भी इस मानव शरीर रह कर ही की जा सकती है और शरीर टिकता है—आहार पानी से। शरीर को भोजन-पानी मिलता रहे, तो वह काम देता रहे। प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम संवरद्वार में साधुओं के आहार करने का उद्देश्य निम्न शब्दों में बताया है;—

“अक्खोवज्जणाणुलेवणमूयं संजमजायामाया-
णिमित्तं संजमभारवहणद्वयाए भुंजेज्जा, पाणधारणद्वयाए
संजएण समियं एवं आहारसमिइजोगेणं भाविओ भव-
अंतरप्पा।”

जिस प्रकार गाड़ी को चलाने के लिए उसकी धूरी में

(४) संयम पालने के लिए—पूजा आदि सत्प्रकार का संयम अपना देना = देवप्राण वस्तु लेने रखने में यतनापूर्वक बर्तने या संयम जीवन का पालन करने के लिए ।

(५) अपने प्राणों की रक्षा के लिए ।

(६) धर्म-चिन्तन के लिए—प्रातःध्यान को टाल धर्मध्यान में शान्तिपूर्वक लगे रहने के लिए

उपरोक्त छः कारणों से निग्रय-मुनि आहार करते आचारांग १-३-३ में लिखा है कि 'संयम-निर्वाह के । उपयुक्त आहार करे—“जाया मायाइ जावए” तथा गडांग सूत्र अ. ७ गा. २६ में लिखा है कि मुनि संयम की के लिए आहार करे—“भारस्स जाता मुणि भुंजएज्ज दशवकालिक ५-१-९२ में लिखा है कि “संयम पाल मोक्ष जाने के लिए ही आहारादि से शरीर टिकाने का भ्रम महावीर प्रभु ने निर्देश दिया है । साधु आहार तो कर किन्तु 'आहार करना ही चाहिए'—ऐसा उनका नियम है । वे आहार करते हैं, उसी प्रकार आहार छोड़ने जानते हैं । उनके आहार-त्याग के निम्न छः कारण, अध्ययन में इसके बाद ही बतलाये हैं ।

(१) रोगोत्पत्ति हो जाने पर ।

(२) उपसर्ग—संकट उपस्थित होने पर ।

(३) ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए । मानसिक :

आहारादि त्याग कर दिया हुआ तब ही प्रभु
मय तप होता है ।

कही तक बतायें । निग्रह-श्रमण के आचार-विचार
से सारे शास्त्र भरे हैं । निष्ठापूर्वक चारित्र्य की आराधना करने
वाले श्रमण इस संसार में हम सब के लिए मंगल रूप है
उत्तमोत्तम हैं, शरणभूत हैं, कल्याणकारी हैं और देव के समान
आराध्य हैं । उनके मंगलमय दर्शन हमारे लिये हितकारी है ।
जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा के आराधक संयमनिष्ठ साधु हमारे
लिये गुरुपद में वन्दनीय और पूजनीय हैं ।

गुरु-पद हमारे लिये परम-पूज्य है । गुरुवर्ग का हम पर
परम उपकार है । गुरुओं की कृपा के कारण ही हम, हमारी
जाति कुल और वंश-परम्परा सुसंस्कारों एवं सदाचार युक्त
रह सके और हम जिनधर्म को प्राप्त कर सके । देव—अरिहन्त
सिद्ध भगवन्तों के समान गुरु—साधु—भी मंगल-रूप है, उत्तम
है और शरणभूत है । हम पर गुरु-पद का महान् उपकार है ।
किन्तु गुरु वे ही वन्दनीय हैं, जो देवाज्ञा को हृदय में स्थापित
कर के पालन करने का रुचिपूर्वक प्रयत्न करते रहते हैं ।
देवाज्ञा के विपरीत आचार-विचार और प्रचार वाले तथा
कथित गुरु इस आराध्य-पद से बाहर होते हैं ।

हमारा भी यह कर्तव्य है कि हम देव-पद आराध्य
गुरु-वर्ग का भक्तिपूर्वक आदर-सत्कार करें । उन्हें अपना परम
पूज्य, परम हितैषी एवं भुक्तिदाता मानें । उनका और उनके
चारित्र्य का पोषण-रक्षण करते हुए अपना हित साधें ।

CONCLUSIONS

陳其南 鄭文輝

जिसमें आत्मा का हित हो ज्ञानावरण हटते हुए ज्ञान पर्याय विकसित हो, वह स्वाध्याय है।

आत्मा और अनात्मा का स्वरूप, उत्थान और पतन का स्वरूप, लोकालोक, पुण्य-पाप, हीनाचार-शुद्धाचार पुनर्जनन-मुक्ति का उपाय बताने वाले एवं आत्मा को परमात्मा बनाने की विधि बताने वाले शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय है।

स्वाध्याय के पांच भेद हैं—१ वाचना २ पृच्छा परावर्तना ४ अनुप्रेक्षा और ५ धर्म-कथा।

वाचना—सम्यक्-श्रुत पढ़ना-सीखना।

पृच्छा—पढ़े हुए श्रुत को समझने के लिए प्रश्न पूछना।

परावर्तना—सीखा हुआ ज्ञान विस्मृत नहीं होना। दुर्लभ हो, इसलिए बार-बार पुनरावृत्ति करना।

अनुप्रेक्षा—सीखे हुए ज्ञान के विषयों पर शास्त्र सुवेद विनियम करना।

धर्म-कथा—आत्म ज्ञान का काम अन्य व्यवसायिक कामों का स्वरूप उनका जो दियोग्यता, अर्थात् धर्मोपदेश देना। अथर्ववेद सूत्र अ. २२ में स्वाध्याय के इन पांच भेदों का उल्लेख किया गया है;—

“समाधाय भवेत् ! शोधे किं नमसि ?

होती है। इसमें काय-वाच-योग एवं काय-वाच-योग है।

“परिमृश्याणं णं भवे ! जीवे किं जणयइ ?
परिमृश्याणं णं वज्जणाइं जणयइ, वज्जणाइं
उप्पाएइ ।

अर्थ—हे भगवन् ! मृत्यु-मात्र ही पुनः-पुनः प्रवृत्ति
करने से किम फल ही प्राप्ति होती है ?

उत्तर—पुनरावृत्ति में निम्न-जन्म-जन्म (गर्भ
होकर स्थिर रहने रूप) होता है और व्यंजन-व्यधि (प्रक्षर
एवं पद लब्धि) उत्पन्न होती है।

“अणुप्पेहाएणं भवे ! जीवे किं जणयइ ? अणुप्पे
हाए आउ य वज्ज्याओ सत्त-कम्मपणउओ वणिपबंधण
वद्धाओ सिद्धिलबंधणवद्धाओ पकरेइ दोहकालट्ठिइयाअं
हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ तिब्बाणुमावाओ मंदाए
भावाओ पकरेइ, बहुप्पएसगाओ अप्पएसगाओ पकरेइ
आउयं च णं कम्मं सिय वंधइ सिय ण वंधइ, असाया-
वेयणिज्जं च णं कम्मं णो मुज्जो-मुज्जो उवचिणइ,
अणाइयं च णं अणवयगं दीहमद्वं चाउरंतं ससारकंतारं
लिप्पामेव वीईवयइ ।”

अर्थ—अनुप्रेक्षा से क्या लाभ ?

उत्तर—अनुप्रेक्षा से आयु-कर्म के सिवाय फल सात
कर्म की प्रकृतियों का बन्धन जो दृढ़ हो, वह शिथिल होता है,

一、前次會議時，曾由主席報告，關於本會之組織，及
經費之籌措，均經通過。茲將主席報告之要點，分述如
下：(一)關於組織：本會之組織，係由會員大會，及
常務委員會，兩部分組成。會員大會，為本會之最高
權力機關，由全體會員組成。常務委員會，為本會之
執行機關，由會員大會選出。其組織及職權，均經
通過。(二)關於經費：本會之經費，係由會員會費，及
社會捐助，兩部分組成。其收支，均經通過。

二、關於本會之組織，及經費之籌措，均經通過。茲將
主席報告之要點，分述如下：(一)關於組織：本會之
組織，係由會員大會，及常務委員會，兩部分組成。
會員大會，為本會之最高權力機關，由全體會員組成。
常務委員會，為本會之執行機關，由會員大會選出。
其組織及職權，均經通過。(二)關於經費：本會之
經費，係由會員會費，及社會捐助，兩部分組成。其
收支，均經通過。

三、關於本會之組織，及經費之籌措，均經通過。茲將
主席報告之要點，分述如下：(一)關於組織：本會之
組織，係由會員大會，及常務委員會，兩部分組成。
會員大會，為本會之最高權力機關，由全體會員組成。
常務委員會，為本會之執行機關，由會員大會選出。
其組織及職權，均經通過。(二)關於經費：本會之
經費，係由會員會費，及社會捐助，兩部分組成。其
收支，均經通過。

कठिनाई से मिल सकते थे । वे खुद लिखते । बाद में लेखकों से लिखवाये जाने लगे । इतना होने पर भी गृहस्थों—श्रावकों को प्राप्त होना कठिन ही था । श्रावक तो अधिकांश सुन का ही सीखते और स्वाध्याय करते । किन्तु अब तो छापखानों के साधन से गृहस्थों के लिये भी सूत्र सुगम हो गये हैं । वे स्वयं वांच सकते हैं, और जहाँ साधु-साध्वी का विचरण नहीं होता हो अथवा बहुत कम होता हो, वहाँ तो मुद्रित सूत्र ही का अवलम्बन होता है । इन्हीं के सहारे धर्म-संस्कार बने रहते हैं इसलिए वाचना रूप स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये ।

ज्ञान पाँच प्रकार का है । यथा—१ मतिज्ञान २ श्रुतज्ञान ३ अवधिज्ञान ४ मनःपर्ययज्ञान और ५ केवलज्ञान ।

मतिज्ञान—श्रोत-चक्षु आदि द्रव्य-इन्द्रियों और । के द्वारा होता हुआ आत्म-अप्रत्यक्ष—परोक्ष ज्ञान । ग्रह चिन्तन, मनन और धारण करने वाली आत्म-शक्ति—बुद्धि चिन्तन कर निर्णय करने की क्षमता । नन्दोसूत्र में अथा ईहा, अवाय और धारणा से मतिज्ञान के चार भेद किये बुद्धि के १ ओत्पात्तिकी २ वैतयिकी ३ कार्मिकी और ४ पाणामिकी, ये चार भेद हैं । सूत्र में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है ।

इसका दूसरा नाम 'आभिनिवोधिक ज्ञान' है, इति और मन के साधन से बोध प्राप्त हो, वह आभिनिवोधिक है । श्रुत से प्राप्त हुए ज्ञान को ग्रहण करना, चिन्तन कर

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

ଶୁଣି ଶୁଣି — : ଶୁଣିବା ଶକ୍ତିର ଗୁଣ ଓ ଶକ୍ତି
 ଶାନ୍ତିର ଗୁଣ ଓ ଶାନ୍ତିର ଗୁଣ ଓ ଶାନ୍ତିର ଗୁଣ
 ଶାନ୍ତିର ଗୁଣ ଓ ଶାନ୍ତିର ଗୁଣ ଓ ଶାନ୍ତିର ଗୁଣ

भाष्य से—विनय रत्न भगवान् जी की मूर्ति का प्रतिमा
प्रारम्भ करते हैं, तब मादि और अंत कहते हैं, तब मध्यम
और क्षायोपशमिक भाव की ज्योत्स्ना अनादि-मध्यम स्थिति है।

अथवा—भवासिद्धि है ज्ञान को अपना साधनमान्यकरना
(सम्यक्त्व प्राप्त करने पर आदि और केवलज्ञान होने पर आदि
का अन्त हो जाता है) और अभव्य को अंगदा अनादि-अपेक्षित
वसित (उसके मिथ्याभूत का कभी अन्त ही नहीं होता)।

समस्त जीवों के अक्षर (कैबलजान) का अनन्तवी माप तो सदैव खुला रहता ही है। यदि इतना भी खुला नहीं रहे तो जीव, अजीव ही बन जाय, परन्तु ऐसा कभी नहीं होता।

११ गमिक श्रुत--दृष्टिवाद गमिक श्रुत है। जिस श्रुति में कुछ या किसी पद की विशिष्टता से युक्त एक ही पद बार बार आवे वह गमिक श्रुत है।

१२ अगमिक श्रुत--कालिक श्रुत--जिसके पाठ (विषयों) में एक सदृश्यता कम और भिन्नता अधिक है।

१३ अगप्रविष्ट--आचारांगादि १२ अंग ।

१४ अंग बाह्य--आवश्यक--सामायिकादि छह आव
श्यक और आवश्यक से भिन्न । आवश्यक से भिन्न दो प्रका
का--१ कालिक--उत्तराध्ययनादि और २ उत्कालिक--
दशवैकालिकादि सूत्र ।

（一）關於本報之組織：本報之組織，係由本報之編輯部、採訪部、印刷部、發行部、會計部、庶務部、及總務部等七部所組成。

（二）關於本報之經費：本報之經費，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

（三）關於本報之業務：本報之業務，係由本報之編輯部、採訪部、印刷部、發行部、會計部、庶務部、及總務部等七部所組成。

（四）關於本報之地位：本報之地位，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

（五）關於本報之未來：本報之未來，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

（六）關於本報之過去：本報之過去，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

（七）關於本報之現在：本報之現在，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

（八）關於本報之未來：本報之未來，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

（九）關於本報之過去：本報之過去，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

（十）關於本報之現在：本報之現在，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

（十一）關於本報之未來：本報之未來，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

（十二）關於本報之過去：本報之過去，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

३ ज्ञान प्राप्त करने वाले को विघ्न उत्पन्न कर बाध
बनने से ।

४ ज्ञान और ज्ञानी से द्वेष करने से ।

५ ज्ञान और ज्ञानी को आशातना करने से ।

६ ज्ञानी से वितण्डावाद करने से ।

उपरोक्त छह कारणों से ऐसे कर्म-मल आत्मा पर लगते हैं कि जिनसे ज्ञान-गुण दब जाता है और निम्न-लिखित दस प्रकार का फल होता है; —

१-५ श्रोत, चक्षु, घ्राण, रस और स्पर्श-इन्द्रिय पर आवरण—मल छा जाता है और ६-१० इन इन्द्रियों से हों वाला ज्ञान भी दब जाता है ।

स्वाध्याय करने वालों को ज्ञानाचार का पालन करना चाहिये । ज्ञान के आठ आचार हैं यथा—

१ कालाचार—अस्वाध्याय काल छोड़ कर कालिका उत्कालिक सूत्रों के स्वाध्याय-काल के अनुसार स्वाध्याय करना

२ विनयाचार—ज्ञान और ज्ञानदाता गुरु (ज्ञानी) व विनय करना ।

३ बहुमानाचार—ज्ञान और ज्ञानी के प्रति हृदय बहुमान रखते हुए आदर-सत्कार करना ।

४ उपधानाचार—त्याग एवं तपपूर्वक सूत्र का वांच करना ।

रहा। जब मनन करने की शक्ति मिली, तो शरीर और इन्द्रियादि तथा कर्मायादि पर ही विमर्श होता रहा। कुछ बड़े, तो मिथ्यात्व (असत्यत्व) पर विमर्श होता रहा। मिथ्यात्व अविरति, प्रमाद आदि के विषय में ही विचारणा चलती रही। चारों गति में खाना, पीना, संग्रह करना, काम-साधना और प्राप्त का संरक्षण तथा परिवर्द्धन—यही जीव की प्रवृत्ति रही। सिद्धांत है कि चारों गति के जीव—१ आहार-संज्ञा, २ भय-संज्ञा, ३ मैथुन-संज्ञा और ४ परिग्रह-संज्ञा में लगे हुए हैं। अर्थ और काम पुरुषार्थ में ही जीव उलझा रहा और इसी विषय में विचार-विमर्श करता रहा। जीव ने धर्म के विषय में सोचा ही नहीं। यदि सोचा भी, तो धर्म के रूप में प्रचलित अधर्म की भूल भुलैया में पड़ गया। मिथ्यात्व को ग्रहण कर के अभिग्रहीत मिथ्यात्वो बन गया। कभी सम्यक्त्व रूपी सूर्य का प्रकाश पाया ही नहीं। जब अकाम-निर्जरा से मिथ्यात्व-मोहनीय कर्म की ६६ कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण से कुछ अधिक अत्यन्त दीर्घ-स्थिति के कर्म खपा दिये और मात्र एक कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण कर्म अवशेष रहे, तब भव्य-जीव ने अपूर्वकरण करके सम्यक्त्व सूर्य का प्रथम दर्शन किया।

सम्यक्त्व—शुक्ति पथ का प्रवेश द्वार

मिथ्यात्व, संसार-चक्र में फँसाये रखने वाला है और सम्यक्त्व, मोक्ष के परम सुख प्रदान कर आत्मा को परमात्मा

चारित्र्य धर्म

विरति की आवश्यकता

अविरति--अपराधमानवी कृपाय-वस्तुषु के उत्पत्ति होती हुई आत्मा की निरंतुरता पशुति, अमर्यादित आनन्द आरम्भ--परिमह एवं कामभोग की अपरिमित इच्छा ।

मिथ्यात्व आत्मा से आत्मा का लक्ष्य ही प्रशुद्ध रह है । जब मिथ्यात्व हट जाता है और हेयोपादेय का विवेक हो जाता है, तो मिथ्यात्व की विशाल भूमि पर से ऊपर सम्पत्ति की प्रथम सीढ़ी प्राप्त हो जाती है । एक सीढ़ी चढ़ने के बाद आगे बढ़ने के लिये विशेष प्रयत्न करना पड़ता है । सम्पत्ति की प्रथम श्रेणी तो अनायास भी प्राप्त हो सकती है । प्रकाम-निर्जरा से अनन्तर कोटाकोटि सागर प्रमाण मोहनीय-कर्म की स्थिति क्षय की जा सकती है । भव्यत्वादि कारणों से अज्ञानपन में ही इतनी निर्जरा होती है । यद्यपि इतनी भारी कर्म-निर्जरा में भी आत्म-पराक्रम होता है और प्रकृति-भद्रता, विनयशीलता, अनुकम्पा आदि शुभ भावों से आत्मा अनन्तानुबन्धी के बन्धन को शिथिल करती हुई यथाप्रवृत्तिकरण तक पहुँचती है । यथा प्रवृत्तिकरण की स्थिति तक पहुँचने के पश्चात् यदि आत्म-अन्ध-पुरुषार्थ से भी आगे बढ़े, तो उसकी आंखों पर बन्धी कुं अविवेक की पट्टी अचानक खुल जाती है । यों अन्धे की आँ मिल गई । अब उसने सिद्धपुरपत्तन का मार्ग देख लिया उसकी अन्धी भटकन मिट गई । अब उसे आनन्द का घा

और भोगतृत्व मानता है और मोक्ष तथा उसके उपाय को स्वीकार करता है, तो उसे मोक्ष प्राप्त करने के लिए मोक्ष के उपाय रूप विरति का आदर करना ही चाहिये। आत्मा, आत्मा की नित्यता, कर्मकतृत्व और भोगतृत्व—ये चार बातें न तो साध्य है और न साधना। ये तो अपने आप सिद्ध हैं। इन्हें न मानने से ये अन्यथा नहीं हो जाती और न इनका स्वभाव पलट सकता है। मानते हुए भी इनकी स्थिति में परिवर्तन और आत्मा का उत्थान तथा मुक्ति तब तक नहीं हो सकती, जब तक वाद की दो बातें स्वीकार कर के साधना नहीं की जाय। मोक्ष (आत्मा की परम शुद्ध एवं परिपूर्ण अवस्था) को साध्य मान कर, उसके साधनभूत व्रतादि उपाय मानने पर ही सम्यक्त्व-भूमिका प्राप्त होती है और उस भूमिका से आगे की श्रेणी तभी प्राप्त हो सकती है, जब कि विरति की साधना—उपाय किया जाय। वर्तमान अवस्था में संतुष्ट हो कर बैठ रहना और साधना के प्रति अनास्था रखना, तो सम्यक्त्व भूमिका से भी पीछे हटना है। आराध्य और आराधना में अद्वा होना सम्यक्त्व है—प्रथम श्रेणी है और आराधना के द्वारा साध्य की ओर बढ़ना—विरति है।

वर्तमान स्थिति में संतुष्ट रहने की बात भी एक प्रकार से भुलावा है। किसी को अनायास लाभ हो जाय, तब वह उस अर्थ-लाभ को छोड़ नहीं देता। पास में यथेष्ट होते हुए भी अनायास हुए लाभ को वह लेता ही है। यदि वह विरत

मदनराज के मामने बाकी वन पर जम जाती है । युवती सौंदर्य देग कर मदनराज बनकरा जाता है । मुन्दरी का आसर्ष्य उनके मन को प्रपन्नी और भिन्नता है । मदनराज प्रभृतिता से अथ तक बचा रहा था । अतएव वह मामने बैठी हुई युवती से बोलने में भी हिचक रहा था । किन्तु उस मुन्दरी ने मदनराज की हिचक दूर कर दी । युवती ने पूछा—“आप कहाँ जा रहे हैं ?”

“मैं दिल्ली जा रहा हूँ । आप ?”

“मैं भी दिल्ली जा रही हूँ । अच्छा है—आपका और हमारा साथ रहेगा । दिल्ली में कहाँ ठहरेंगे—आप ?”

घनिष्टता बढ़ती है । दिल्ली स्टेशन पर उतरते समय तो दोनों चिर परिचित आत्मीय जैसे बन जाते हैं और एक ही होटल में ठहरते हैं । दूसरे दिन डेढ़ पहर दिन चढ़ने पर युवक की नींद खुलती है और वह अपने आपको अकेला पाता है । वह कोकिला को अपने पास नहीं देखता है, तो सोचता है—‘सोच गई होगी या स्नानगृह में होगी ।’ प्रतीक्षा असह्य होती है और वह खोज करता है । उसकी आँखें तब खुलती हैं, जब वह समझता है कि कोकिला उसकी हीरे की अंगुठी, गले की माला, मूल्यवान् घड़ी और लगभग १७०० के नोट सहित बटवा भी पार कर के उसे नंगा-नवाव बना गई है । वास्तव में वह मुन्दरी एक ठग-मण्डली की सदस्या थी । ठग-मण्डली इस ताक में रहती थी कि कोई मालदार आसामी सेकण्ड या फर्स्ट

मनुष्य मनुष्य जियो पावे या भूषं की ओर १३ रहा होवे कोई सुजता मनुष्य उसे होन वाले दुःख से बचाने के लिए नई मार्ग बतावे, तो उसे राम-क्षेपी नहीं कहा जा सकता। उसे को भला और बुरे का भेद, पाप को पाप और धर्म को धर्म बताना न तो राम-क्षेपी है, न पुराई ही है। जिन वीतराग भगवन्तों ने यह विवेक-बुद्धि प्रदान की, वे खेदज्ञ थे। जीवों का हिताहित एवं सुख-दुःख जानते थे। जीवों को दुःखों से मुक्त कर के परम मुक्ति बनाने के लिए उन्होंने हितोपदेश दिया है। उन्हें अपने समान राम-क्षेपी कहना अज्ञान है।

एकेन्द्रिय जीवों के तो वचन-योग भी नहीं है और विकलेन्द्रिय के वचन-योग होते हुए भी मनोयोग के अभाव में सोचने-समझने की शक्ति नहीं है। उनका वचन-योग भी ओष रूप से होता है। उनमें संज्ञी-श्रुत वाले जीवों के समान सोच समझ कर बोलने की शक्ति ही नहीं है। इसलिये वे मनुष्यों के समान वाणी-व्यवहार नहीं कर सकते। उनकी इस हीनदशा से वे वीतराग नहीं हो गये। यह भी उनकी विवशता ही है। वे अनक्षर-श्रुत के समान कुछ न कुछ बोलते, चीखते, चिल्लाते हैं। इसीसे समझ लेना चाहिए कि विकलेन्द्रियों की यह विवशता है कि वे वचन-योग का ठोक उपयोग नहीं कर सकते। उन्हें विरत मानना सर्वथा अनुचित है।

अत्रत भी आत्मा का महान् शत्रु है। यदि इसका निग्रह कर के विजय प्राप्त नहीं की गई, तो मिथ्यात्व रूपी दवे हुए

दोनों का समावेश हो जाता है । विरति में श्रेष्ठ धर्म तो तत्त्व-विरति—अनगार-धर्म ही है, परन्तु जिन आत्माओं में उत्तम धयोपशम नहीं हो, प्रत्याख्यान-मोह के उदय से वह अनगार-धर्म नहीं अपना सकता हो, तो भी अनगार-धर्म में पूर्ण आस्था रखता हुआ और उसकी प्राप्ति की भावना रखता हुआ देशविरत-आवक बने । यथायोग्य व्रत-प्रत्याख्यान करने से वह आगे बढ़ कर पाँचवें गुणस्थान में पहुँच जाता है । पण्डित के कुछ निकट हो जाता है । पाँचवें गुणस्थान में त्रिंशत् एक-छोटे से व्रत का पालक, निम्नतम स्थान पर रहा हुआ आवक भी होता है और साधुता के निकट—सर्वोच्च श्रमणभूषण प्रतिमा का पालक भी होता है, अपनी योग्यता के अनुसार पान्थ प्रणुव्रतादि का पालन अवश्य करना चाहिये । जैन-श्रद्धालुपन्न मनुष्य के लिये प्रणुव्रतों का पालन अत्यंत सुगम है । जैनेति—

प्रथम प्रणुव्रत में वेदन्द्रियादि निरपराध वस्तु-जीवों की भावपूर्वक संकल्पपूर्वक हिंसा करने का त्याग होना है । अर्थात् जो जैन-श्रद्धालु व्रत-व्यक्ति वगैरे जीवों को नहीं मारता । मच्छर, पतंग, गिल्ली, और कीड़ी-मकोड़ी जैसी जीवों का भी नहीं मारता और विषधर, गर्प-विन्दु आदि को भी नहीं मारता । अर्थात् जो जीवों को मारता है । इस प्रकार हमारा उक्त कुलीनता का प्रथम प्रणुव्रत—सर्वोच्च-व्यवस्था है । दूसरा प्रणुव्रत—

पमतलियाँ ऊपर की ओर रहे। उन पर मध्य में—अपनी दाहिनी ओर के नीचे, बायें हाथ की हथेली नीचे खुली रखें और उस दाहिने हाथ की हथेली इस प्रकार रखें कि जिससे दोनों हाथों के अंगूठे मिल जायें। उन अंगूठों पर दृष्टि स्थिर रखकर ध्यान करे।

पर्यंकासन—दाहिने पाँव का पंजा बायें जंघा के नीचे और बायें पाँव का पंजा दाहिनी जंघा के नीचे रखकर—पालथी आसन से बैठ कर—पूर्वोक्त ध्यान-मुद्रा करके

आसन दृढ़, स्थिर और कड़क हो और ध्यान में ईश्वरपथिकी के प्रत्येक पद के अर्थ पर, अपनी प्रवृत्ति में हुए बाधाओं की खोज हो। उतावल चञ्चलता और उकताहट के बिना विधिपूर्वक ध्यान किया जाना चाहिए। ध्यान पालने की विधि करने के पश्चात् लोगस्स का उच्चारण किया जाता है 'लोगस्स' चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों की स्तुति है और गद्यमय न हो कर पद्यमय (गाथावद्ध) है। इसे गाथा की लय में गाना चाहिये और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े हुए गाना चाहिये। जिनेश्वरों की स्तुति करते समय भी वेगार टालने के समान शीघ्रता पूर्वक और निरादर युक्त—गिनती बोलने की तरफ बोल जाना उचित नहीं है। इससे यथार्थ लाभ नहीं होता।

लोगस्स के पाठ से मोक्ष प्राप्त जिनेश्वर भगवन्तों की स्तवन करने के बाद, यदि त्यागी मुनिराज या महासंतों के उपस्थित हों, और उनके स्वाध्यायादि किसी कार्य में बाध

प्रेमा, ध्यान, सात्विक अभ्यास और मित्रावधन किया
सकता है। सामायिक का सार प्रारम्भ में ही व्यतीत हो
शुभभावों में आत्म-सन्तुष्टि रहे, नूतन ज्ञान की प्राप्ति हो, या
सीसे हुए ज्ञान की पुनरावृत्ति हो, लेशमात्र भी अशुभ चिन्तन
नहीं हो, सांसारिकता—राजनैतिक, सामाजिक, व्यावसायिक
और कीटुम्विक विषयों को—स्पर्श ही नहीं किया जाय।
साधु-संतों के व्याख्यान में सामायिक की जाती है, परन्तु इस
युग में कई वक्ताओं के व्याख्यान लौकिक हो गये हैं। कई
हास्यादि मनोरंजन से श्रोतागण पर छा जाने का प्रयत्न करते
हैं, जिससे सामायिक भी दूषित हो जाती है और आत्मा में
हास्यमोहनीय आदि छाई रहती है। जिस व्याख्यान में वैराग्य-
रत्न भरपूर हो, हेय-जेय उपादेय का विवेक हो, जीव-अजीव,
आत्मा-परमात्मा, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म और बन्ध-मोक्ष का
स्वरूप बतलाया जाता हो, ऐसे व्याख्यान सामायिक काल
को सफल बना सकते हैं।

जिनेश्वर भगवंत का स्तवन-स्तुति या स्तोत्र भी
सरागता बढ़ाने वाले नहीं हो। जैसे कि बाल अवस्था के खेल,
माता के मनोरथ, लग्न आदि संसार अवस्था का रसीला
गायन, राजकुल की विरह-वेदना के काव्य, अरिष्टनेमिजी से
सत्यभामा-रुक्मिणी आदि के फाग खेलने और मोहोत्पादक
व्यंग-व्याण छोड़ने वाले सम्वाद। ये सब उदयभाव की क्रियाएँ
हैं, भले ही इनका सम्बन्ध भावी जिनेश्वर देव से हो। यदि

में नहीं जाने देना । इसके लिए स्मरण-श्रुति स्वाध्याय कुछ भी अवलम्बन लिया जा सकता है, परन्तु विशेष लाभ लिए ध्यान—एकाग्रता बढ़ाने का पुनरायं करना आवश्यक है।

श्री अनुयोगद्वार मूल में सामायिक के पात्र की संज्ञा में पहिचान इन शब्दों में कराई है; —

“जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे नियमे तवे ।

तस्स सामादयं होइ, इइ केवलि भासियं ॥१॥

जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरे सु य ।

तस्स सामादयं होइ, इइ केवलि भासियं ॥२॥”

—जो आत्मा को शांत रख कर मूलगुणरूप संयम उत्तरगुणरूप नियम और अनशनादि तप में लगाये रहता है उसी को सामायिक होती है—ऐसा केवलज्ञानी सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवंतों ने कहा है । जो साधक त्रस और स्थावर—सर्मा प्राणियों—पर समभाव रखता है, उसे सामायिक होती है । ऐसा केवलज्ञानी भगवंतों ने कहा है ।

तात्पर्य यह कि सामायिक में मनोनिग्रह हो कर संयमित होना और प्रशस्त परिणति होना आवश्यक है, तभी वह भाव-सामायिक होती है । बिना भाव-सामायिक के द्रव्य-सामायिक नगण्य रहती है ।

विशेषावश्यक में उपरोक्त ^{सिद्ध} _{जने} गाथाओं के अतिरिक्त निम्न गाथा भी है; —

.....

.....

.....

.....

- १ शीति—सामाजिक जीवन में शीति फैलाना ।
- २ शान्ति—शान्तिपूर्ण भावना का प्रदर्शन करना ।
- ३ शान्ति—शान्तिपूर्ण भावना का प्रदर्शन करना ।
- ४ शान्ति—शान्तिपूर्ण भावना का प्रदर्शन करना ।
- ५ शान्ति—शान्तिपूर्ण भावना का प्रदर्शन करना ।
- ६ शान्ति—शान्तिपूर्ण भावना का प्रदर्शन करना ।
- ७ शान्ति—शान्तिपूर्ण भावना का प्रदर्शन करना ।
- ८ शान्ति—शान्तिपूर्ण भावना का प्रदर्शन करना ।
- ९ शान्ति—शान्तिपूर्ण भावना का प्रदर्शन करना ।

其目的在於使社會各階級之利益得以調和，而社會之進步得以實現。

社會主義之理想，在於建立一個公平、正義、和平之社會，使人人皆有平等之機會。

社會主義之實踐，在於消除貧富差距，保障勞工權益，實現社會福利。

——社會主義之實踐——

社會主義之實踐，在於消除貧富差距，保障勞工權益，實現社會福利。

社會主義之實踐，在於消除貧富差距，保障勞工權益，實現社會福利。

——社會主義之實踐——

社會主義之實踐，在於消除貧富差距，保障勞工權益，實現社會福利。

——社會主義之實踐——

社會主義之實踐，在於消除貧富差距，保障勞工權益，實現社會福利。

社會主義之實踐，在於消除貧富差距，保障勞工權益，實現社會福利。

社會主義之實踐，在於消除貧富差距，保障勞工權益，實現社會福利。

——社會主義之實踐——

१ निरालस—बसने, खोजने से पूर्व जमीन-हो कर खोजना ।

२० मृगमृग—स्पन्द साधु के नहीं होने कर मुगमुग इस प्रकार जन्म सम्बन्धी शेषों को समझ कर इस त्याग करने से जन्म सम्बन्धी अति-भार नहीं लगता ।

३ कायगुहप्रणिधान—शरीर सम्बन्धी बुरी कि करना । बिना पुंजी जमीन पर बैठना, शरीर से साधक कि करना । इस अति-भार के कारण भेद इस प्रकार हैं—

१ कुप्रासन—पाँव पर पाँव चढ़ा कर इस प्रकार बैठना जिससे मुक्तजनों का प्रविनय हो ओर अभिमान प्रकट हो ।

२ चलासन—अस्थिर आसन, बारबार आसन बदलना

३ चलदृष्टि—दृष्टि को स्थिर नहीं रख कर इधर उधर देखते रहना ।

४ सावद्यक्रिया—पापकारी क्रिया करना, संकेत करना सांसारिक कार्य अथवा घर की रखवाली आदि करना ।

५ आलम्बन—अकारण दिवाल, खंभा आदि का सहारा ले कर बैठना ।

६ आकुंचनप्रसारण—बिना कारण हाथ-पाँव फैलाना और समेटना ।

७ आलस्य—आलस्य से शरीर को मोड़ना ओर

1954年12月25日

● 2010年10月10日 星期五

東洋の歴史を論ずるに於ては、

[illegible]

一、政治思想：政治思想是政治行为的先导，是政治行为的灵魂。政治思想决定着政治行为的性质、方向、内容和方式。政治思想是政治行为的内在动力，是政治行为的指导思想。政治思想是政治行为的灵魂，是政治行为的先导。政治思想是政治行为的灵魂，是政治行为的先导。

4444 4444 4444 4444 4444

RECEIVED

[illegible][illegible]

FOR THE RECORD

一、
 二、
 三、
 四、
 五、
 六、
 七、
 八、
 九、
 十、

[illegible]

2010年10月10日

其間亦有許多困難之處。如：(一) 如何使農民了解政府之政策？(二) 如何使農民組織起來？(三) 如何使農民團結起來？(四) 如何使農民行動起來？(五) 如何使農民覺悟起來？(六) 如何使農民覺醒起來？(七) 如何使農民覺悟覺醒起來？(八) 如何使農民覺悟覺醒覺悟起來？(九) 如何使農民覺悟覺醒覺悟覺悟起來？(十) 如何使農民覺悟覺醒覺悟覺悟覺悟起來？

以上種種困難之處，皆為農民運動中之重要問題。如：(一) 如何使農民了解政府之政策？(二) 如何使農民組織起來？(三) 如何使農民團結起來？(四) 如何使農民行動起來？(五) 如何使農民覺悟起來？(六) 如何使農民覺醒起來？(七) 如何使農民覺悟覺醒起來？(八) 如何使農民覺悟覺醒覺悟起來？(九) 如何使農民覺悟覺醒覺悟覺悟起來？(十) 如何使農民覺悟覺醒覺悟覺悟覺悟起來？

以上種種困難之處，皆為農民運動中之重要問題。如：(一) 如何使農民了解政府之政策？(二) 如何使農民組織起來？(三) 如何使農民團結起來？(四) 如何使農民行動起來？(五) 如何使農民覺悟起來？(六) 如何使農民覺醒起來？(七) 如何使農民覺悟覺醒起來？(八) 如何使農民覺悟覺醒覺悟起來？(九) 如何使農民覺悟覺醒覺悟覺悟起來？(十) 如何使農民覺悟覺醒覺悟覺悟覺悟起來？

以上種種困難之處，皆為農民運動中之重要問題。如：(一) 如何使農民了解政府之政策？(二) 如何使農民組織起來？(三) 如何使農民團結起來？(四) 如何使農民行動起來？(五) 如何使農民覺悟起來？(六) 如何使農民覺醒起來？(七) 如何使農民覺悟覺醒起來？(八) 如何使農民覺悟覺醒覺悟起來？(九) 如何使農民覺悟覺醒覺悟覺悟起來？(十) 如何使農民覺悟覺醒覺悟覺悟覺悟起來？

साधना है । पोषध के चार भेद इस प्रकार हैं;—

१ आहार त्याग पोषध—चारों प्रकार के आहार का त्याग करना ।

२ शरीर संस्कार त्याग पोषध—स्नान, मंत्र, उबटन, पुष्प-माला तथा ग्राम्भूषणादि का त्याग करना—शरीर की शोभा बढ़ाने वाली प्रवृत्ति नहीं करना ।

३ ब्रह्मचर्य पोषध—मेथुन त्याग । उपलक्षण वे श्रोतादि सभी इन्द्रियों के वैषयिक सुख का त्याग कर, ज्ञान-ध्यानादि में रमण करना ।

४ अव्यापार पोषध—आजीविका तथा संसार सम्बन्धी सभी सावध्य योगों का त्याग करना ।

इस प्रकार चार प्रकार का पोषध करके मन को शांत बना लेना, सांसारिक सभी सावध्य कार्यों के भारी बोझ के एक दिन-रात के लिए उतार कर आत्म-शान्ति का अनुभव करना और आत्मा में हलकापन एवं शान्ति का अनुभव करना । यह संसार में तीसरा विश्राम है । (ठाणांग ४-३)

सामायिक की विधि के समान पोषध की विधि के स्वाध्याय, श्रवण, वाचन, पृच्छा, अनुप्रेक्षा, स्तुति, स्मरण, ध्यान, प्रतिक्रमण और अनित्यादि भावनाएँ आदि का चिन्तन करते हुए पोषध का काल आत्मा को धर्म में लगाये हुए पूरा करना चाहिए ।



समझना चाहिए। पाँच प्रकार से कम हो, वह कामें देश-पोषध है।

भान पोषध—प्रौढिक भान—राम-द्वेष अर्थात् आर्त्त-रोद्ध ध्यान को त्याग कर धर्मध्यान में लीन रहना।

भानकों का अर्थ (छः काया) अतः भी देश-पोषध है। भगवती सूत्र १२-१ में संन्यास-पुष्कली प्रकरण में लिखित भोजन कर के पोषध करने के प्रसंग से भी देश-पोषध की परिपाटी सिद्ध होती है।

पोषध में सामायिक करना या नहीं ?

देश-पोषध वाले के सावध-व्यापार किसी अंश में खुला है अथवा सर्व-पोषध में एक करण एक योग आदि से प्रत्याख्यान हो तो सामायिक करना सार्थक है, किन्तु दो करण तीन योग के सर्व-पोषध में, सामायिक का समावेश अपने-आप हो जाता है। जो इस प्रकार का पोषध करे, उसके लिए पृथक् रूप से बिना किसी विशेषता के सामायिक करना, कोई खास महत्व नहीं रखता। निर्दोष रूप से पोषध करने के लिए, पोषध के पूर्व दिन निम्नलिखित दोषों से वचना चाहिए—

- १ पोषध के पूर्व-दिन ठूस-ठूस कर खाना।
- २ पोषध की पूर्व-रात्रि में मैथुन सेवन करना।
- ३ पोषध में प्रवेश करने के पूर्व नख-केश आदि की सजाई करना।

一、此經之義，在於明心見性，不可不察。
二、此經之旨，在於修心養性，不可不究。
三、此經之要，在於悟心明理，不可不悟。

一、此經之義，在於明心見性，不可不察。
二、此經之旨，在於修心養性，不可不究。
三、此經之要，在於悟心明理，不可不悟。

佛經集覽

一、此經之義，在於明心見性，不可不察。
二、此經之旨，在於修心養性，不可不究。
三、此經之要，在於悟心明理，不可不悟。

一、此經之義，在於明心見性，不可不察。
二、此經之旨，在於修心養性，不可不究。
三、此經之要，在於悟心明理，不可不悟。

一、此經之義，在於明心見性，不可不察。

一、此經之義，在於明心見性，不可不察。

और गुण भी कर्मों का बन्ध करना—मूर्खता का लक्षण है।

“श्रमण-निग्रन्थों को प्रायुक्त-प्रत्येयणीय आहारादिसे वाला अल्प प्रायुष्य का (अनाशन में या शैथिल्य प्रयत्न प्रभावस्था में ही मरने रूप) बन्ध करता है और निर्दोष आहार देने वाले दीर्घायु का बन्ध करता है। दुषित आहार देने से दुस्तम जीवन रूप दीर्घ आयु का बन्ध होता है और पथ्य कर आहार देने से शुभ दीर्घ आयु का बन्ध होता है” (भग. श. ५ उ. ६)।

“श्रमण-निग्रन्थों को प्रायुक्त एषणीय = अचित्त एवं निर्दोष आहारादि प्रतिलाभने वाला श्रमणोपासक अपने कर्मों को निर्जरा करता है” (भग० ८-६)।

यह बारहवां व्रत श्रमण जीवन की अनुमोदना रूप है। जो श्रमण को उत्तम और मंगल रूप मानता है, वही भावपूर्वक श्रमण को प्रतिलाभता है। उनकी पर्युपासना करता है। श्रमण-निग्रन्थ की पर्युपासना से धर्म-श्रवण करने को मिलता है। धर्म-श्रवण से ज्ञान, ज्ञान से क्रमशः विज्ञान, प्रत्याख्यान, संयम, अनासन्न, तप, कर्मनाश, निष्कर्मता और मुक्ति होती है। अर्थात् श्रमण-निग्रन्थों की पर्युपासना का परम्परा फल मुक्ति प्राप्त होना है (भग० २-५) इसलिए अतिथि-संविभाग व्रत का पालन भाव पूर्वक करना चाहिए।



[illegible]

一、
二、
三、
四、
五、
六、
七、
八、
九、
十、

[illegible]

一、關於我國經濟建設之重要意義

我國經濟建設之重要意義，在於能使我國由農業國變為工業國，由貧窮變為富強。

二、我國經濟建設之現狀與問題

我國經濟建設之現狀，雖有進步，但仍存在許多問題，如工業基礎薄弱，農業生產力低下等。

三、我國經濟建設之方針與任務

我國經濟建設之方針，應以發展生產力為中心，實行工業化與農業現代化。

四、我國經濟建設之成就與展望

我國經濟建設之成就，已顯著提高國民生活水平，並為實現社會主義奠定了基礎。

五、我國經濟建設之經驗與教訓

我國經濟建設之經驗，在於堅持自力更生，艱苦奮鬥，並不斷學習先進國家之經驗。

六、我國經濟建設之未來發展

我國經濟建設之未來發展，應進一步深化改革，擴大開放，提高經濟競爭力。

七、我國經濟建設之國際地位

我國經濟建設之國際地位，已日益提高，成為世界經濟體系中重要一環。

八、我國經濟建設之社會影響

我國經濟建設之社會影響，在於促進社會主義建設，實現民族復興之偉大目標。

九、我國經濟建設之總結

我國經濟建設之總結，在於堅持社會主義道路，不斷改革，不斷發展。

十、我國經濟建設之展望

我國經濟建設之展望，充滿信心，相信在各黨各派共同努力下，一定能取得更大成就。

十一、我國經濟建設之建議

我國經濟建設之建議，應加強基礎設施建設，提高科技水平，促進產業升級。

१० उद्दिष्ट भक्त त्याग प्रतिमा—पूर्वोक्त सभी प्रतिमाओं के नियमों का पालन करते हुए इसमें विशेष रूप से ओद्देशिक आहारादि का भी त्याग होता है। वह अपने बालों का उस्तरे से मुण्डन करवाता है, अथवा शिखा रखता है। यदि उसे-कोटुम्बिक-जन, द्रव्यादि के विषय में पूछे, तो वह जानता हो तो कहे कि “मैं जानता हूँ” और नहीं जानता हो तो कहे कि “मैं नहीं जानता।” इस प्रकार वह कम से कम एक दो और तीन दिन तथा अधिक से अधिक दस मास तक इस प्रतिमा का पालन करता है।

११ श्रमणभूत प्रतिमा—पूर्वोक्त दस प्रतिमाओं के सभी नियमों का पालन करने के सिवाय इस प्रतिमा का धारक श्रावक अपने सिर के बालों का या तो मुंडन करवाता है, या फिर लोच करता है (यह उसकी शक्ति पर निर्भर है) इसके अतिरिक्त वह साधु के आचार का पालन करता है। उसके उपकरण और वेश, साधु के समान ही होते हैं। वह निग्रन्थ-श्रमणों के धर्म का बराबर पालन करता है, मन और वचन से ही नहीं, किन्तु शरीर से भी सभी प्रकार की क्रिया करता है। चलते समय वह युग-परिणाम भूमि को देख कर चलता है। यदि मार्ग में उस जीव दिखाई दे, तो उनकी रक्षा के लिए सोच-समझ कर इस प्रकार पांव उठाता और रखता है कि जिससे जीव की विराधना नहीं हो, जीवों की रक्षा के लिए वह अपने पांव को संकुचित अथवा टेढ़ा रख

२ जिस प्रकार भारवाहक, मङ्ग मूत्र की सहायता के लिए भार को प्रत्यक्ष रख कर उतना रक्त विश्राम लेता है उसी प्रकार श्रमणोपासक, मामाधिक और देशात्मिकता का पालन करते हुए, उतने समय तक अपने पाप-भार को प्रत्यक्ष रख कर शांति का अनुभव करता है ।

३ जिस प्रकार भारवाहक, अपने बोझ को उतार कर, मार्ग में पड़ते हुए नागकुमारादि देवालयों में जा कर विश्राम लेता है, उसी प्रकार श्रमणोपासक, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या को प्रतिपूण पोषण कर के, उतने समय अपनी

जैनधर्म का आस्तिकवाद

आस्तिकवाद और नास्तिकवाद, इन दो वादों संसार की समस्त विचारधाराएँ विभक्त हो सकती हैं। आस्तिकवाद का सामान्य अर्थ है—'अस्तित्व स्वीकार करने वाला मन्तव्य' और नास्तिकवाद का अर्थ है—'अस्तित्व अस्वीकार करने वाली विचारधारा।' सामान्यतया एक रूप से आस्तिक या नास्तिक तो कोई भी व्यक्ति मिलेगा। मनुष्य में किसी न किसी विषय में आस्था अनास्था रहती ही है। कम-से-कम अपने जीवन, शरीर टिकाने के साधन—भोजन, पानी, रोग-निवारण के साधन औषधी, माता-पिता, भाई-भगिनी, पत्नी, पुत्रादि तथा सोन-चाँदी, घर आदि सम्पत्ति और दृश्यमान पदार्थों पर आस्था तो सभी को होती है। चन्द्र, सूर्य, वर्षा, जन्म, वचन युवावस्था, मृत्यु, राजा, राष्ट्रपति आदि, अधिकार और अधिकारी, ऐसे बहुत-से विषयों में आस्था रखता है और आत्मा, स्वर्ग-नरकादि अदृश्य वस्तुओं में अनास्था रखता है कोई भी व्यक्ति एकान्त रूप से आस्तिक या नास्तिक नहीं होता। किन्तु आस्तिकवाद और नास्तिकवाद का वाद के रूप में जो प्रचलन है, वह उपरोक्त सामान्य अर्थ से सम्बन्धित

और विशिष्ट घटनाओं का, इस जन्म में बालक को ज्ञान को देना और निदेशों की घटनाएँ कई महीनों तक लगा-प्रकाशित होंगी रही कि जिनमें संप्रहृ कर प्रकाशित कि जाय तो एक स्वतन्त्र पुस्तक बन सकती है और कुछ क्यों तो इस विषय में खोज भी होने लगी है।

मृतात्माओं से सम्पर्क साधने की बातें भी प्रकाश आ चुकी हैं। 'नवभारत-टाइम्स' के रविवारीय संस्करण जुलाई ६४ से अक्टूबर तक के अंकों में उनका प्रकाशन हुआ है और उनके आधार पर स. द. ५-१०-६५ में पृ. ४६३ में लिखा भी है। पूर्वभूव मानने पर पुनर्भव प्रत्येक आप स्वीकृत हो जाता है, क्योंकि वर्तमान भूव, पुनर्भव और मृतात्माओं से सम्पर्क भी पुनर्भव को मान्य कर रहा है।

वास्तव में जीव अमर एवं अविनाशी है, ध्रुव है इसकी अवस्थाएँ परिवर्तनशील हैं। कृत-कर्मानुसार शरीर इन्द्रियादि का संयोग होता है, सुख-दुःख का अनुभव होता है और स्थिति पूर्ण होने पर मरता है—वर्तमान शरीर को छोड़ कर नवीन शरीर धारण करता है।

जीवों की विभिन्न गतियाँ, जातियाँ सुख-दुःख आदि देवता से भी यह मानना पड़ेगा कि वे पूर्वकृत कर्मों का शुभाशुभ फल भोग रहे हैं। एक ही पिता और माता से उत्पन्न दो, चार या पाँच पुत्रों के शरीर के वर्णादि, शरीरबल, इन्द्रियबल तथा बुद्धिबल सम्पन्नता-विपन्नता और सुख-दुःख की विभिन्नता एवं

जीव कर्म-फल का भोक्ता है

जीव एक स्वतन्त्र द्रव्य है, शाश्वत है और अच्छे-बुरे का कर्ता है। इतना मान लेने के बाद जीव को कर्म के फल भोग करने वाला भी मानना ही चाहिए। जीव कर्ता तो परंतु भोक्ता नहीं हो, यह कैसे हो सकता है? किन्तु मनुष्य कुश्रद्धा या अश्रद्धाजन्य तर्क के चक्कर में पड़ कर फल का भोग नहीं मानते। किये हुए कार्यों के प्रत्यक्ष देने वाले फल को तो वे स्वीकार करते हैं, जैसे—मोपधी से रोग-निवृत्ति, विष-भक्षण से प्राणनाश, भोजन करने से भुख मिटना, पानी पीने से प्यास मिटना, गरम वस्त्रों से शीत निवारण और चोरी, जारी, हत्या आदि के फलस्वरूप दण्ड भोग आदि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले कर्म-फल तो नास्तिक और कुतर्की भी मानते हैं, किन्तु परोक्ष-कर्म पूर्व-भवों में किये हुए कर्मों का भवान्तर में होने वाले फल को वे लोग नहीं मानते। यही विवाद का विषय है और यही उनकी भूल है। वे परोक्ष कार्यों के प्रत्यक्ष फल से भी इन्कार नहीं कर सकते। जैसे—किसी ने भोजन, दूध या दवाई में विष मिला कर किसी को खिला दिया। यह विष-दान खाने वाले ने या और किसी अन्य ने नहीं देखा, किन्तु जब उस अदृश्य कार्यों का फल प्रत्यक्ष हुआ, तब वे मान गए कि इसे किसी ने विष दिया—विष दे कर मार डाला है। इस प्रकार परोक्ष कार्यों का प्रत्यक्ष फल

कुल की रूप-सुन्दरियाँ राजा-महाराजा या कोट्याधिराज। प्रेम-पात्री और लक्ष्मीदेवी-सी बन कर, एक रानी के सम-वैभवशालिनी हो जाती थी। इस प्रकार बिना चोरी, डाकू-कालावाजारी आदि के भी धनवान बन जाते हैं। इन वस्तु-तो खेती भी धनवान बनने का साधन बन गई। साहुकारों का व्याज देने वाले, उलटे साहुकारों से व्याज लेने वाले हो गए। यह सब पुण्योदय के प्रभाव से हुआ। जिनके पाप का उ-रहा, उन्हें या तो उपयुक्त साधन नहीं मिला, या बीज न-मिला, जमीन खराब हो गई, वर्षा न्यूनाधिक हुई, कीड़े लग-सा गए, या फसल चोर ले गए। किसी भी निमित्त से हानि-गई। हमने देखा है—एक खेत वाले के फसल अच्छी होती-तब उसके पड़ोस वाला खेत कमजोर है। उसकी फसल कम-है। इनमें बाहर दिखाई देने वाले निमित्त ही सब कुछ नहीं-होते, आभ्यन्तर कारण भी रहता ही है। वह आभ्यन्तर का-शुभाशुभ कर्मों का उदय है।

प्रभी फल का प्रकोप हुआ, घर में ५-७ व्यक्ति-हैं। उनमें से कस्यों की फल का कष्ट भोगना पड़ा। वह-एक की ओर फिर दूसरा-तीसरा, इस प्रकार फल-एक-दूसरे-को लगने लगा। किन्तु घर में एक या दो मनुष्य ऐसे भी-हैं जिन्हें फल ने स्वयं ही नहीं दिया। छोट का बाप-निमित्त-आभ्यन्तर रहने पर भी वे अप्रभावित रहे। इसका मुख्य-कारण-यह है कि उनके उस समय अमानविद्वतीय-कर्म का उदय-है।

ज्ञानावरण का उदय ? कितना अन्तर है इनमें ? श्रुतके महात्माओं के भी ज्ञानावरणीय की पाँचों प्रकृतियों का उदय रहता है, फिर भी वे कितने ज्ञानी हैं ? श्रुत-सागर के पगामी उन महात्माओं के ज्ञानावरणीय कर्म का कितना परिशोधन और निगोद के जीव का कैसा प्रगाढ़तम उदय ?

चक्षुदर्शनावरण का उदय निगोद के जीवों के भी और मनुष्यों के भी, किन्तु अन्तर कितना ? एकेन्द्रिय से तेजस्विय तक के जीवों के लिए सर्व-धाती और चोरीन्द्रिय-पंचेन्द्रिय के लिए देशधाती । इसमें भी बहुत अन्तर है । किसी के भी होते हुए भी दिखाई नहीं देता और किसी को बहुत कम दिख देता है । किसी पक्षी की दृष्टि मनुष्य से भी अधिक तेज होती है । क्षयोपशम और उदय की विचित्रता देखिये कि कभी उदय विशेष, तो कभी क्षयोपशम भी विशेष होता है । क्षयोपशम वा अंजन या चश्मे का निमित्त पा कर देख सकते हैं और ऐसी क्षयोपशम वाले के उदय का जोर हो, तो चश्मा टूट-फूट खो जाता है । फिर उदय का जोर कम हुआ कि खोया हुआ चश्मा मिल जाय । दुर्बिन प्राप्त कर विशेष सूक्ष्म या अधिक दूर की वस्तु देख सकते हैं । अन्तर मुहूर्त में उदय और अन्तर्मुहूर्त में क्षयोपशम होने योग्य कर्म भी होते हैं । तात्पर्य यह कि उदय का मन्दतम रस भी होता है और तीव्रतम भी, और स्थिति जघन्य काल की भी होती है और उत्कृष्ट काल की भी । उदय स्थान भी अनन्त होते हैं ।

पत्ते, पुष्प, फल और बीज उत्पन्न और नष्ट हो पुनः उत्पन्न और पुनः नष्ट—यह परम्परा चलती है। किन्तु एक दिन ऐसा भी आता है कि वह वृक्ष है, गिर पड़ता है, या काट दिया जाता है। फिर पुष्पादि उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार भव्य जी कभी ऐसा भी समय आता है कि उसको बन्धन-रहित हो कर मुक्ति हो जाती है।

मनुष्य की वंश-परम्परा कब से है? एक वंश-परम्परा कब से चली? क्या इसका पता चल सकता है? नहीं, शास्त्रों के आधार से यह तो कहा जा सकता है कि मनुष्य अकर्मभूमि से कर्मभूमि हुआ, किन्तु ऐसा समय नहीं रहा कि जब मनुष्य का अस्तित्व था ही तब उसकी उत्पत्ति नहीं हुई ही। वास्तव में मनुष्य की भी अनादि है और वंश-वैल अनादिकाल से चली आ रही है। इस दो-चार या अधिक से अधिक जन-धन पीढ़ी के पुनर्जनन का दृष्टिकोण नहीं है, उनके प्राणों का नहीं। किन्तु निरन्तर ही है कि उनमें पूर्व की प्रज्ञा पूर्व के मनुष्य की प्रज्ञा से। इस प्रकार वंश-वैल प्रजापति का प्रमाण है, फिर भी इसका अर्थ हीना हम देखते हैं। इससे हमें पता चलता है कि नहीं हुई या हा कर मनुष्य का जन्म नहीं होता ही नहीं है। अनादि का प्रमाण ही नहीं है। अनादि का प्रमाण ही नहीं है। अनादि का प्रमाण ही नहीं है।

लोकाग्र का सिद्धस्थान है। मुक्तात्मा वहीं पहुँच कर शांति-पर्यवसित रहती है—संशय निश्चल, परम स्थिर।

नास्तिक लोग मुक्ति नहीं मानते हैं, किन्तु कुप्रास्तिक भी मुक्ति नहीं मानते। उनकी दृष्टि में मुक्ति एक कल्पना मात्र है। एकेश्वरवादियों में से कुछ में मुक्ति की मान्यता है, किन्तु स्वरूप के विषय में भ्रम है। वे एकेश्वरवादियों, मुक्तात्मा को भी ईश्वर से कम दर्जे पर मानते हैं। श्री दयानन्द सरस्वती आदि तो मुक्तात्माओं की पुनरावृत्ति भी मानते थे। विश्वभर में मात्र एक ही ब्रह्म मानने वाले अद्वैतवादी के मत से तो मुक्ति का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। जब एक ब्रह्म के सिवाय दूसरी कोई आत्मा ही नहीं, तो मुक्ति किसकी हो? आत्मा को कूटस्थ, अपरिणामी एवं उत्पाद-व्ययरूप पर्यायों से रहित मानने वाले मत में मुक्ति की मान्यता भी कैसे घट सकेगी? उस मत में न तो बन्धन घट सकेगा, न मुक्ति ही। बौद्ध-मत की स्थिति विचित्र है। वह आत्मा को नहीं मानता। रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार, इन पाँच स्कन्धों के समूह से उत्पन्न होने वाली शक्ति को आत्मा अथवा विज्ञान कहता है और इसे भी प्रतिक्षण नष्ट होने वाला मानता है। फिर भी बोधिसत्त्व के भव एवं पुनर्जन्म स्वीकार करता है। निर्वाण मान कर भी बुद्ध को संसार के निर्वाण के लिए प्रवृत्ति-रत मानता है। जहाँ आत्मा की प्रवृत्ति शेष रह जाती है, वह मुक्ति ही कैसी? प्रवृत्ति होती है—योग से

अपना उत्थान कर लेता है ।

नय स्वरूप

मेरा वक्तव्य

श्रुतज्ञान, नय युक्त होता है । श्रुत के प्रमाण से विषय किये हुए पदार्थों का किसी अपेक्षा से कथन करना, दूसरी अपेक्षाओं का विरोध नहीं करते हुए, अपनी दृष्टि के अनुसार अभिप्राय व्यक्त करना—नयवाद है ।

प्रत्येक वस्तु में अनन्त धर्म रहे हुए हैं । उन अनन्त धर्मों में से किसी एक धर्म को मुख्यता से जानने वाला ज्ञान, 'नय ज्ञान' कहलाता है । नय, प्रमाण का एक अंश होता है ।

'जितने वाक्य उतने ही नय'—इस प्रकार नय के अनेक भेद होते हैं । और ये अनेक नय 'सुनय' और 'दुनय'—ऐसे दो भेद में बंट जाते हैं ।

जो नय सम्यग्दृष्टि पूर्ण हो, जिसमें अभिप्रेत नय के अतिरिक्त दृष्टियों का विरोध नहीं होता हो, और जिसमें विषमता नहीं हो—वह 'सुनय' कहलाता है । इसके विपरीत जो अभिप्रेत दृष्टि के अतिरिक्त सभी दृष्टियों का विरोध करता हो, जिसकी विचारधारा में विषमता हो, ऐसे मिथ्या-दृष्टि पूर्ण, एकान्तिक अभिप्राय को 'दुनय' कहते हैं ।

सम्यग् एकान्त से युक्त है, इसमें मिथ्या एकान्त को स्था नहीं है ।

वस्तु को सही रूप में विभिन्न दृष्टियों से समझा के लिए अनेकान्त एक उत्तमोत्तम सिद्धांत है । इसे संशयवा कहना भूल है, और इसका दुरुपयोग करना मिथ्यात्व है आजकल अनेकान्त का दुरुपयोग करके भ्रम फैलाया जा रहा है । यह मिथ्या प्रयत्न है ।

वस्तु को विविध अपेक्षाओं से जानने के लिए अनेकांतवाद उपयोगी है, किंतु आचरण में अनेक दृष्टियां नहीं रहती । वहां तो एक लक्ष्य, एक पथ, एक साधन, एक आराध्य और एकाग्रता ही कार्य-साधक बनेगी । यदि संयम पालन में एक लक्ष्य नहीं रहा और आचरण में अनेकान्तता अपनाई, तो लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो सकेगी । अनेकान्त के नाम पर मिथ्यात्व, अविरति, असाधुता और ध्येय की विपरीतता नहीं चलाई जा सकती । हेय, हेय है, उपादेय, उपादेय है । अनेकान्त के नाम पर हेय को उपादेय बताने वाले विचार स्वीकार करने के योग्य नहीं हैं । एक की आराधना ही सफलता प्राप्त करवाती है । गुण-स्थानों को चढ़ कर और श्रेणी का आरोहण कर, बीतराज सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तथा सिद्ध दशा वे ही प्राप्त कर सकते हैं—जो अपने ध्येय में दृढ़—निश्चल रह कर प्रगति करते हैं ।

अनेकान्त के नाम पर "सर्व-धर्म-सर्वभाव" का प्रचार करने वाले भ्रम में हैं । वर्तमान में कई वक्ता और लेखक,

जैनदर्शन और विज्ञान

जैनदर्शन निरूपित सत्त्व अद्वितीय अजोड़ और सर्वोपरि है, स हैं। क्योंकि कि इसका निरूपण परम चीतरागो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जिनेश्वर गवतों ने किया है। इस पर हमें दृढ़ श्रद्धा है, पूर्ण विश्वास है। इस परीक्षा करने का सम्यग्दृष्टियों के मन में तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता संसार में ऐसी कोई कसौटी ही नहीं, जिस पर इन तत्त्वों को परखा जा सके। परन्तु भौतिक-विज्ञान के विकास से प्रकाश में आई कुछ बातों का कई जैनों भी प्रभावित हैं। उनकी दृढमगाती श्रद्धा का स्थिर एवं सुदृढ करने के लिए, यहाँ कुछ पृष्ठ, सम्यग्दर्शन में प्रकाशित कुछ लेखों पर विद्ये जाते हैं, जिन में वैज्ञानिक निष्कर्षों से जैनतत्त्वज्ञान एवं आध्यात्मिक विज्ञान की सत्यता स्पष्ट दिखाई दे रही है। वैज्ञानिकों की भौतिक शोध भी अधूरी एवं एकांगी है। उन्होंने जो कुछ जाना-देखा है, वह आंशिक ही है और आत्मिक एवं अरूपी पदार्थ को सोजने में तो वे सर्वथा असमर्थ ही रहे हैं।

व्याख्याता महानुभावों को इस विषय को ठीक समझ कर श्रोताओं को समझाना चाहिये। इस लेखमाळा के लेखक हैं;—

(श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा, एम. ए.)

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। इसमें प्रत्येक सिद्धांत विज्ञान के प्रकाश में निरखा-परखा जाता है। विज्ञान की कसौटी पर खरा न उतरने पर उसे अंधविश्वास माना जाता

ध्वनि के द्वारा अमंग्य योजन क्षेत्र में रहे हुए असंख्य देव-देवी को इन्द्र का आदेश गुनाता है कि—

“भरत क्षेत्र में तीर्थंकर भगवान् का जन्म हुआ इन्द्र महाराजा जन्मोत्सव मनाने के लिए भरतक्षेत्र विनिता नगरी जाएंगे। अतएव सभी देव उपस्थित होंगे।”

जब इन्द्र की सुघोषा घंटा बजती है, तो पृथक्-पृथक् लाखों विमानों में रहो हुई छोटी-छोटी घंटाएँ भी बजने लग हैं, जिससे सभी देव-देवी स्तब्ध रह जाते हैं, फिर उन घण्टा के नाद से निकला हुआ आदेश गुनते हैं।”

ऐसा ही उल्लेख ‘रायपसेणी सूत्र’ में भी है। आजक की ब्राडकास्टिंग स्टेशन और रेडियो से भी ये अत्यधिक शक्ति शाली हैं।

विना वायुयान आकाश गमन

चारित्र-साधना से प्राप्त आत्म-सामर्थ्य से महात्मा कुक्षियों में आकाश में उड़ कर हजारों-लाखों माइल दूर पहुँच जाते थे—विना किसी वाहन के। ‘विद्याचारण जंघाचारण लब्धि’ की यह शक्ति थी। आज का वायुयान उसकी किसी समानता में नहीं आ सकता। और विद्याधर तो विद्याचालित वायुयान से आकाश में गमनागमन करते ही थे।

आत्मा और पुद्गल की गमन-शक्ति—एक समय में असंख्य योजन पहुँचने की क्षमता जिनागम में वर्णित है।

का मांगलिक दिन है। आज भी अनेक विद्वान राज्य उपस्थित हैं। नागरिक-जन भी बहुत बड़ी संख्या में देखने और समझने के लिए उपस्थित हैं। महारा प्रधानमन्त्री भी पधार कर आसन पर बैठ गए। मह प्रधान मन्त्री से पूछा;—

“महामात्य ! आज शास्त्रार्थ किस विषय पर है

“महाराज ! इस समय लोगों में ‘प्रारब्ध’ ‘पुरुषार्थ’ चर्चा का विषय बना हुआ है। कुछ लोग कि—सुख-दुःख, जीवन-मरण, लाभ-प्रलाभ, जय-पराजय, अपकीर्ति, सुकृत्य-दुकृत्य और धर्म-अधर्म आदि द्वन्द, प्रारब्ध के अनुसार ही होते हैं। कुछ लोग कहते ‘प्रारब्ध (कर्म)’ से कुछ नहीं होता, जो कुछ होता है पु से ही होता है। पुरुषार्थ तो प्रारब्ध को भी पलट सकता कुछ ‘काल’ को महत्व दे कर अन्य को उपेक्षित करते हैं स्वभाववादी हैं और कई नियतिवादी हैं। इस प्रकार विवाद संसार में चल रहे हैं। इन वादों पर विचार कर निर्णय करना आवश्यक है। आज यही विषय शास्त्रार्थ रखा गया है।”

राजा ने कहा—“विषय तो बहुत अच्छा चुना है आपने। इन विषयों के शास्त्री कौन-कौन हैं ?”

महामन्त्री ने राज्य-पण्डित से कहा—“पण्डितजी आप शास्त्रियों का परिचय दीजिये।”

पक्ष कुशलतापूर्वक उपस्थित करेंगे। इनके शास्त्रार्थ पहले में अन्यत्र हुए हैं, परन्तु सभी अनीर्णित रहे। आज इस समा में ये निर्णायक चर्चा करने के लिये उपस्थित हुए हैं। अब इन्हें अपना-अपना पक्ष स्थापित करने की आज्ञा प्रदान करें?

कालचन्द्र का कौशल

राज्य-शास्त्री के बैठने पर महामात्य ने कालचन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहा—“क्यों भाई कालचन्द्रजी ! जो कार्य प्रारब्ध अथवा पुरुषार्थ से सम्पन्न होते हैं, उन्हें आप काल का ही परिणाम कैसे कहते हैं ?”

अब कालचन्द्र खड़े हुए और अपने सिद्धांत का परिचय देने लगे;—

“महाराजाधिराज, महामन्त्रीजी, पण्डित-प्रवर एवं समस्त समाजन ! काल महाबली है। काल की शक्ति पा कर ही स्वभाव, पुरुषार्थ, कर्म और नियति सफल होती है। काल की उपेक्षा कर के तो कोई टिक ही नहीं सकता। एक मनुष्य ने बहुत मुकृत्य अथवा दुष्कृत्य—पुण्य अथवा पाप कर के शुभ अथवा अशुभ कर्म रूप प्रारब्ध सम्पादन किया, किन्तु उसे उसी समय—कर्म करते समय ही, फल प्राप्त नहीं हो जाता। यदि प्रारब्ध आदि में शक्ति होती, तो कार्य करने समय ही फल दे देते ? परन्तु फल होता है—कालान्तर में। अब काल

की भी स्थिति होती है। स्थिति पूर्ण होने पर पृथक्ता होती ही है। स्थिति भी काल ही है। अतएव समस्त जड़ और चैतन्य पर काल का साम्राज्य अबाध चल रहा है। कर्म को उदय में लाने वाला और उपयुक्त काल तक फल-भोग करा कर मुक्त करने वाला भी काल ही है। विशेष क्या कहूँ मनुष्य को संसार से मुक्त करने वाला भी काल ही है, क्योंकि भवस्थिति पूर्ण हुए बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता, वह भवस्थिति भी काल रूप है और उस काल का मैं प्रतिनिधि हूँ। पण्डितजीने सब प्रथम मेरा परिचय दे कर उचित ही किया है, क्योंकि मैं पाँचों में मुख्य हूँ। इसलिये मेरा सिद्धांत प्रबल है—यह आपको मान्य होगा। मैं आशा करता हूँ कि आप मेरा सिद्धांत स्वीक करेंगे।”

अपना पक्ष प्रस्तुत कर पं. कालचन्द्रजी बैठ गये।

स्वभावचन्द्र का कथन

कालचन्द्र के बैठ जाने पर महामन्त्री ने स्वभावचन्द्र को सम्बोधन कर कहा—“कहो पण्डित स्वभावचन्द्रजी ! जे काल, प्रारब्ध और पुरुषार्थ से ही सभी कार्य सिद्ध हो सकत हैं, तो आप की आवश्यकता ही क्या है ? आपके बिना कोन-स काम रुकता है ? अपनी आवश्यकता सिद्ध करिये।

स्वभावचन्द्र—“महानुभाव ! क्या आप मेरा सामर्थ्य नहीं जानते ? ये काल, प्रारब्ध और पुरुषार्थ ही क्या, कोई भ

हैं, मच्छियों पानी में अपने स्वभाव से ही तैरती हैं, आकाश में स्वतः उड़ने का स्वभाव पक्षियों का है, सर्प पेट घसीटता हुआ सरकता है, गाय-भैंस आदि पशु अपने चार पाँवों से चलते हैं, मनुष्य दो पाँवों से चलता है, यह सब मेरे—स्वभाव के—अनुसार ही है। पशु-पक्षी के बच्चे जन्म लेने के बाद बोलने-चलने लगते हैं, जब कि मनुष्य के बच्चे को बोलने-चलने में वर्ष-दो वर्ष लग जाते हैं। पक्षियों का जन्म अण्डों के रूप में होता है, किंतु मनुष्यों का जन्म गर्भाशय से होता है। पशुओं में वन्दरों का स्वभाव कूदने-फाँदने का है, वैसा अन्य पशुओं का नहीं है। यह सब भिन्नता स्वभाव से ही उत्पन्न है, काल, प्रारब्ध आदि से नहीं।

अन्न का स्वभाव क्षुधा शान्त कर के पोषण करने का है, पानी प्यास बुझाता है, वटवृक्ष छोटे-छोटे फल देता है और तुम्बे की लता बड़े-बड़े फल देती है, कदल के पुष्प नहीं होते, नीम में कडुआपन, गन्ने में मिष्टता, त्रिप में मारकता, मदिरा में मादकता, मीठल में वमन कराने का और सनाय (सोना-मुखी) में विरेचकता आदि सभी अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही कार्य करते हैं। अपने स्वभाव के विरुद्ध किसी से कोई कार्य करवाने की शक्ति किसी में नहीं है।

कई विषयों में देश-स्वभाव भी कार्य करता है। जैसे—आफ्रिका के हव्सियों का वर्ण काला, युरोपियनों का गोरा। इसी प्रकार देश-विशेष के लोगों के बाल, आँखें और नासिका आदि

सुस्ता और दूसरा चालाक, एक सीमाग्यवंत और दूसरा दुर्मा और एक स्वामी और दूसरा सेवक बनता है, तो क्या यह भेद काल के कारण हुआ, या स्वभाव से ? नहीं, इस द्विधा में तो काल कारण बनता है, न स्वभाव ही । क्योंकि इस प्रकार भेद उत्पन्न करने की इनकी शक्ति ही नहीं है । यह शक्ति मेरी है । मैं ही इस प्रकार के भेद का कारण हूँ । दोनों पुत्रों का जन्म-काल समान है । दोनों ही एक ही पिता के वीर्य और एक ही माता के रज से उत्पन्न हुए हैं । दोनों एक ही माता के उदर में साय ही रहे और जन्म के पश्चात् दोनों एक ही वातावरण में रहे । इसलिए स्वभाव-प्रभाव भी दोनों पर समान ही हुआ । इतना होते हुए भी दोनों में इतनी अधिक भिन्नता दिखाई देती है । इस भिन्नता का कारण मेरे सिवाय और कौन हो सकता है ? मैं दावे के साथ कहता हूँ कि इस भेद का कारण मैं स्वयं ही हूँ । जिसने पूर्व-भव में अच्छे—शुभ-कर्म किये, उसे उसके अनुकूल अच्छे संयोग मिले और जिसने पापकर्म किये, उसे प्रतिकूल संयोग प्राप्त हुए । सत्य ही कहा है कि—

“कर्म प्रताप तुरंग खिलावत, कर्म से छत्रपति पन होई ।
 कर्म से पुत्र सुपुत्र कहावत, कर्म से ओर बड़ो नहीं कोई ।
 कर्म फिर्यो जव रावण को, तव सोने की लंक छिन में ही सोई ।
 आप बड़ाई करो कहा मूरख, कर्म करे सो करे नहीं कोई” । १।

कोई राजा, कोई रंक, कोई रोगी, कोई निरोग, कोई धनवान, कोई दरिद्र, एक पालकी में बैठ कर चलने वाला,

हैं । एक दीर्घायु होता है, तो दूसरा युवावस्था में ही मर जाता है । इस प्रकार के समस्त चमत्कार मेरे ही हैं । मेरे सिवा और किसी में यह शक्ति नहीं है । मैं जिस पर प्रसन्न होता हूँ, उसे सभी इच्छित पदार्थ मिलते हैं और जिस पर मेरा क्रुद्धादृष्ट हो जाती है, वह लुट जाता है, वरवाद हो जाता है । राजा को रंक और रंक को राजा बनाने वाला मैं ही हूँ । मैं सिवाय ऐसा कोन शक्तिशाली है जो मनुष्य ही नहीं, पशु पक्षियों को भी स्वर्गीय सुख प्रदान कर दे ? यदि मैं किसी को नरक के गहन गर्त में धकेल कर घोर दुःख देना चाहूँ, तो क्या काल या स्वभाव उसे बचा सकेगा ?

जीवों को प्राण-शक्ति मैं ही प्रदान करता हूँ । एकेन्द्रिय से निकाल कर पंचेन्द्रिय की उच्च-जाति में मैं ही प्रतिष्ठित करता हूँ और यदि कुपित हो जाऊँ तो पंचेन्द्रिय के उच्चासन से पटक कर एकेन्द्रिय के निगोद के गोले में भी मैं ही फेंक देता हूँ । शरीर स्वास्थ्य, मनोबल एवं बौद्धिक-विकास करने वाला मैं ही हूँ और इससे उलट-विनाश भी मैं स्वयं करता हूँ । मैंने बड़े-बड़े बुद्धिमान चतुर और निपुण माने जाने वाले पर भी समय पर ऐसा चक्कर चलाया कि वे महामूर्ख बने और लोगों में हँसी के पात्र हुए । मैंने कई मूर्खों के हाथों से ऐसे कार्य भी करवा दिये कि जिससे वे लाभान्वित भी हुए और प्रशंसित भी ।

हैं। एक दीर्घायु होता है, तो दूसरा युवावस्था में ही मर जाता है। इस प्रकार के समस्त चमत्कार मेरे ही हैं। मेरे सिवाय और किसी में यह शक्ति नहीं है। मैं जिस पर प्रसन्न होता हूँ, उसे सभी इच्छित पदार्थ मिलते हैं और जिस पर मेरी वक्रदृष्टि हो जाती है, वह लुट जाता है, बरबाद हो जाता है। राजा को रंक और रंक को राजा बनाने वाला मैं ही हूँ। मेरे सिवाय ऐसा कोन शक्तिशाली है जो मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षियों को भी स्वर्गीय सुख प्रदान कर दे ? यदि मैं किसी को नरक के गहन गर्त में धकेल कर घोर दुःख देना चाहूँ, तो क्या काल या स्वभाव उसे बचा सकेगा ?

जीवों को प्राण-शक्ति मैं ही प्रदान करता हूँ। एकेन्द्रिय से निकाल कर पंचेन्द्रिय की उच्च-जाति में मैं ही प्रतिष्ठित करता हूँ और यदि कुपित हो जाऊँ तो पंचेन्द्रिय के उच्चासन से पटक कर एकेन्द्रिय के निगोद के गोले में भी मैं ही फंसा देता हूँ। शरीर स्वास्थ्य, मनोबल एवं बौद्धिक-विकास करने वाला मैं ही हूँ और इससे उलट-विनाश भी मैं स्वयं करता हूँ। मैंने बड़े-बड़े बुद्धिमान चतुर और निपुण माने जाने वालों पर भी समय पर ऐसा चक्कर चलाया कि वे महामूर्ख बने और लोगों में हँसी के पात्र हुए। मैंने कई मूर्खों के हाथों से ऐसे कार्य भी करवा दिये कि जिससे वे लाभान्वित भी हुये और प्रशंसित भी।

सद यह समझते होंगे कि कर्मचन्द्र महाकूर और निंद्य हैं किन्तु नहीं, मैं न तो कूर हूँ और न कृपालु । मैं विशुद्ध न्याय करता हूँ । मैं एक बीतराग के समान तटस्थ रह कर जिसके जो प्रकृति होती है, उसे वैसा ही फल देता हूँ । मुझे ठगने या मुझसे अन्यथा करवाने की शक्ति किसी में नहीं है । मैं अपने कर्जंदारों को लाख अथवा करोड़ वर्ष बीतने पर भी नहीं भूलता । कहा भी है कि—

“ना भुक्तं क्षीयते कर्म, कल्पकोटिशतैरपि ।

अवश्यमेव भोक्तव्यं, कृतं कर्म शुभाशुभम्” १ । १।

— करोड़ों कल्प व्यतीत हो जाय तो भी किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता । किये हुए कर्मों का फल तो अवश्य भोगना पड़ता है ।

युग पलट जाते हैं, राज्यशासन बदल सकते हैं, रीति-

१ आगमों ने भी मेरी सत्ता स्वीकार की है । यथा—

“कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि”—किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना मुक्ति नहीं होती (उत्तरा १३-१०)

“कत्तारमेव अणुजाइकम्मं”—कर्म कर्ता का अनुसरण (पीछा) करता है (उ. १३-२३)

“कम्मसच्चा हू पाणिणो”—प्राणियों के कर्म ही सच्चे हैं (उ. ७-२०)

“कम्मोहि तुप्पन्ति पाणिणो । सयमेव कउंहि गाहउ, नो तस्मिं मुच्चेज्जणुदुयं”—जीव अपने कर्म से लिप्त हो कर दुःखी होते हैं । उनके कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता । (सूय. १-२-१-४)

“शकदाल ! यदि कोई पुरुष तुम्हारे वरतन तोड़े-फोड़े नष्ट करे, या चुरावे (और कोई पुरुष तुम्हारी पत्नी के साथ संभोग करे) तो क्या तुम उसे दण्ड दोगे”—भगवान् प्रश्न किया ।

“भगवन् ! मैं उस पुरुष को मारूँगा, पीटूँगा, ठोकरों से पीट दूँगा, पाँव तले रोंदूँगा और बांध कर डण्डे बरसाऊँगा । जाना ही नहीं, प्राण भी हरण कर लूँगा”—शकदाल ने आवेश के साथ कहा ।

“शकदाल ! तुम अपने सिद्धांत के अनुसार उस पुरुष को दण्ड नहीं दे सकते । क्योंकि तुम्हारे मत से वरतनों का फूटना ब्रह्मसत्त्व नियति के अनुसार ही हुआ, पुरुषार्थ से नहीं, फिर उस पर क्रोध क्यों करना और पीटना भी क्यों ? ऐसा करके तुमने अपने विरुद्ध आचरण कर के पुरुषार्थ को ही मान्य कर दिया । अब तुम्हें स्पष्ट रूप से उत्थान^१ कर्म-बल-वीर्य-पुरुष-कार-कर्म को स्वीकार कर लेना चाहिए”—भगवान् ने कहा ।

शकदाल समझ गया । उसने नियतिवाद त्याग कर पुरुषार्थ का सिद्धांत ग्रहण कर भगवान् का अनुशासन स्वीकार किया और भगवान् का परम भक्त बन गया ।

(३) भगवती सूत्र के प्रथम शतक तृतीय उद्देशक में—

^१ उत्थान—कार्य करने को उत्थार होना—उठना । कर्म—दयार-दण्डना, भोजना आदि । बल—शारीरिक सामर्थ्य, वीर्य—प्राप्ति का मूल । पुरुषकार पराक्रम—कार्योन्मादि योग्य प्रयत्न ।

—सूर्य पूर्व में उदय होता है, परन्तु वह भी यदि कभी पश्चिम में उदय होने लगे । अटल माना जाने वाला सुमेरु पर्वत भी कभी चलायमान हो जाय, अग्नि उष्णता छोड़ कर शीतल हो जाय, पर्वत की शिला पर कमल उत्पन्न हो जाय । ये सभी अनहोनी भी कदाचित् देवयोग से हो जाय, परन्तु भवितव्यता स्वरूप जो कर्मरेखा बन चुकी, वह तो अचल, अटल ही रहती है । वह किसी भी शक्ति से अन्यथा नहीं हो सकती ।

हे पुरुषार्थ वादी ! वह भवितव्यता—होनहार में ही हैं । मेरे अटल विधान में परिवर्तन करने की शक्ति किसी में भी नहीं है । मनुष्य कुछ भी सोचे, कितना और कैसा ही प्रयत्न करे, मैं अपने स्थान पर अटल रह कर अपना विधान सफल कर के ही रहता हूँ । मेरे विधान के अनुसार ही फल मिलता है । मैं पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हूँ । मुझ पर किसी का बल नहीं चल सकता ।

प्रत्यक्ष में दिखाई देने वाले एक जीव के प्रयत्न का फल, मैं दूसरे को भी दिला सकता हूँ । सपेरे के पिटारे में रहे हुए सपें और चूहे का दृष्टांत तो प्रसिद्ध ही है । एक भूखे चूहे को मिठाई की गन्ध आई, वह भूखा था । मिठाई का पिटारा और साँप का करंडिया—दोनों निकट ही रखे हुए थे । चूहा साँप के पिटारे को मेवा-मिठाई का भाजन समझ कर काटने लगा । घंटा-दो घंटा परिश्रम कर के उस में छिद्र बनाया । परन्तु उसके भीतर बैठे हुए भूखे सपें ने उस चूहे का ही भक्षण

करना। इस प्रकार पुरुषार्थ करने पर ही सफलता मिलती है। बिना पुरुषार्थ के पूर्वोक्त तीन प्रकार की अनुकूलता भी व्यर्थ हो जाती है। इसलिए उन तीन के साथ पुरुषार्थ का जुड़ना भी आवश्यक है। इस समय कालादि तीनों गोण और पुरुषार्थ मुख्य हो जाता है।

पुरुषार्थ करते हुए भी कभी विघ्न उत्पन्न हो जाते हैं, जो दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो प्रयत्न कर के दूर किये जा सकते हैं, और दूसरे वे जो किसी भी प्रकार नहीं टलते। अभ्यास करते हुए किसी रोग ने घर-दवाया और पढ़ाई रुक गई, किंतु पुरुषार्थ से डॉक्टर के पास गये, दवाई ली और स्वस्थ हो कर अभ्यास चालू किया। एक निराधार विद्यार्थी को छात्रवृत्ति मिलती थी, पुस्तकादि भी किसी की ओर से प्राप्त थे। किसी कारण छात्रवृत्ति बंद हो गई, और पढ़ाई रुकने का समय आया, किंतु प्रयत्न करने पर किसी अन्य से सहायता प्राप्त हो गई और पढ़ाई चालू रही। इस प्रकार पुरुषार्थ में हटाये जाने वाले विघ्न तो पूर्व-कर्म में माने जाते हैं, किंतु कभी किसी के सामने ऐसे विघ्न आ कर उठ जाते हैं कि जो टल ही नहीं सकते। जैसे—परीक्षा देने समय अचानक चमकर खा कर गिरना और मूर्च्छित हो जाना, परीक्षा के दिन ही कोई दुर्घटना हो जाना इत्यादि। इसमें परिश्रमपूर्वक किये हुए अभ्यास का कोई परिणाम नहीं मिले और अनुशोण हो रहना पड़े। इस प्रकार के विघ्न निषांत हो

प्रारब्ध (पूर्वकर्म) का विषय अधिकांश सजीव वस्तु से सम्बन्धित है। निर्जीव वस्तु के विषय में तो इतना ही है कि सजीव वस्तु के पूर्वकालीन संयोग (मिश्र-परिणत) ही उसके पूर्व-कर्म हैं। सजीव प्राणोवर्ग यद्यपि इन्द्रिय, प्राण, शरीर, अंगोपांग, गति, जाति, संहनन, संस्थान, जीवन-मरणादि पूर्व-कर्म के अनुसार प्राप्त होते हैं, तथापि कर्मानुसार प्राप्त प्रत्येक शक्ति का विकास तो पुरुषार्थ से ही होता है। शरीर मिला कर्मयोग से, परन्तु शरीर का पोषण, रक्षण आदि नहीं किया जाय, तो उसका विकास नहीं होता। इन्द्रियों की भी रोगादि से रक्षा नहीं की जाय, तो विकास के बदले विनाश होने लगता है। सभी कर्म ऐसे निकाचित नहीं होते कि जो बिना पुरुषार्थ किये फल दे ही देते हों। कई कर्मों का उदय संयोगाधीन होता है, कई देश-काल के स्वभावाधीन होते हैं और कई कर्मों का उपशम, संक्रमण, उद्घर्शन, अपवर्तन ही सकता है। इसलिए पूर्वकर्म की मर्यादा भी अनुल्लंघनीय नहीं है।

कुछ लोग यह सोच कर कि—“कर्म में लिखा है, बही होगा। इसमें न्युनाधिक नहीं हो सकता।” इस प्रकार कर्म को स्वतन्त्र कारण मानने की भूल करते हैं। इससे प्रत्यर्थ भी हो सकते हैं। कर्म को स्वतन्त्र कारण मानने वाले, पुरुषार्थ छोड़ कर आलसी एवं अकर्मण्य बन सकते हैं और धर्म-कर्म से भ्रष्ट हो सकते हैं। वे प्राप्त संपत्ति एवं शक्ति भी देते हैं। और जो लोग कर्म-कारण का सर्वथा निवेद्य करते हैं, कर्म-फल-

है। यद्यपि नियति का समावेश पूर्वकर्म में हो सकता है, परन्तु पूर्वकर्म का अधिकांश भाग पुरुषार्थ के अधीन होने के कारण निकाचित कर्म को नियति के अन्तर्गत रखा गया है, क्योंकि यह पुरुषार्थ की सत्ता से बाहर है।

यद्यपि एक कार्य साधने में अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है। उन सब की गणना की जाय तो अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु उन सब का समावेश इन पाँच कारणों में हो सकता है। इन पाँच कारणों का भी 'संग्रह नय' से संक्षेप किया जाय तो काल, पुरुषार्थ के संयोग में, नियति पूर्वकर्म में और प्रारब्ध (कर्म) भूतकालीन पुरुषार्थ में मिल कर स्वभाव और पुरुषार्थ ये दो ही मुख्य कारण रहते हैं।

महामन्त्री, महोदय ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार पाँच कारणों का यत्किंचित् पृथक्करण करके योग्यायोग्य का विचार किया है। आप स्वयं सत्यासत्य का निर्णय कर के इन वादियों को न्याय प्रदान करें। यही मेरा निवेदन है।

महामन्त्रीजी राजेन्द्र से निवेदन करने के लिए खड़े हुए और बोले;—

“महाराजाधिराज। पंडितजी ने पाँचों कारणों की जो समीक्षा की, वह उचित है। अब इसमें विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं लगती। इसलिए इन पाँचों को निर्णय प्रदान करने की कृपा करें।

की गौणता है। अचानक अकस्मात् (घटना विशेष में) नियति की प्रधानता और अन्य की गौणता है। वस, इसी प्रकार प्रत्येक वादी अपने-अपने विषय में प्रधानता और अन्य के विषय में अपनी गौणता स्वीकार कर के गर्व और अधिक वाद त्याग करदे और एक-दूसरे का बल स्वीकार करें।

सभी समासद और वादीगण महाराजा की जय बोलते प्रणाम करके चले गये। (सभा विसर्जित हुई)

अपने विचार

उपरोक्त निर्णय का अनुवाद लिखते समय मेरे मन में विचार उत्पन्न हुए, उन्हें भी मैं पाठकों के विचारार्थ त करना उपयुक्त समझता हूँ।

पंडितजी के पर्यालोचन और महाराजा के निर्णय में कार्य में पाँचों कारणों का सम्बन्ध स्वीकार करते हुए ह्यता-गौणता और नियति के क्षेत्र की संकुचितता बताई है कदाचित् व्यावहारिक दृष्टि से होगी और नियति की शक्ति भी बड़ी घटनाओं की दृष्टि से बताई होगी। पाँचों कारणों का प्रत्येक कार्य की नियति में योग उचित है, और सभी का क्षेत्र भी समान है। कार्य छोटा या बड़ा हो या बड़ा, मेरी समझ से पाँचों की नियति अनिवार्य लगती है।

नियति का काम भी दोनों प्रकार का है—नियति

२ नियति-नियत होना—उन महात्माओं का प्रयत्न इस भाव में वास्तविक हो, इस प्रकार ही नियति नहीं थी। उनका देव और मनुष्य भव पुनः करना ही होता है। इसलिए उस भव में सिद्ध नहीं होते।

इस प्रकार किसी भी कार्य की सफलता-निष्फलता में पापों का सम्मिश्रित होना और अनुकूल-प्रतिकूल रहना उचित लगता है। इतना होते हुए भी मनुष्य को चाहिये कि पुरुषार्थ की मुख्यता देकर सम्यक् प्रयत्न करता रहे। छद्मस्थ मनुष्य भवितव्यता नहीं जान सकता। इसलिए उसे आत्म-शुद्धि का प्रयत्न करते ही रहना चाहिये। उसे नियति के भरोसे प्रमादी नहीं बनना है। छद्मस्थ मनुष्य के लिये व्यवहार (पुरुषार्थ) प्रथम स्थान रखता है और केवलज्ञानी के लिये निश्चय (नियति) प्रथम है। अतएव सम्यग् पुरुषार्थ करना ही हितकारी है।

आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी ने उपदेश-पद गा. १६४ में कहा है कि—

“कालो सहाव-नियई, पुव्वकयं पुरिस-कारणेगंता ।

मिच्छत्तं ते चेव उ, समासओ होति सम्मत्तं ।”

—काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत-कर्म, और पुरुषकार, इन कारणों को एकान्त रूप से प्रत्येक को अकेला कारण माने तो वह मिथ्यात्व है, और इन में से किसी को भी नहीं छोड़ कर सभी को साथ—एकत्रित मानना सम्यक्त्व रूप होता है।

चारित्र्य-मोहनीय के अनन्तानुबन्धी कपाय-चतुष्क के सतत-सहयोग की आवश्यकता है। मोहराज का महासेनाधिपति मिथ्यात्व-मोहनीय है, तो उसका प्रबलतम शस्त्र—चक्र-कुदर्शन—अनन्तानुबन्धी है। दोनों का अविनाभावी सम्बन्ध है। इनका साथ कभी छूटता ही नहीं। हां, यह हो सकता है कि कभी अन्य चोकड़ी की प्रबलता में इसका प्रवाह मंद हो जाता हो। देवलोक एवं ग्रैवेयक में रहे हुए प्रथम गुणस्थानी देव के संज्वलन चोक का विशेष उदय हो और उसके वेग के आगे अनन्तानुबन्धी का प्रवाह दब जाता हो। जैसे महानदी में आई हुई वेगपूर्वक बाढ़ के समय नाले का बहाव कुछ रुक जाता है, उसी प्रकार संज्वलन के प्रवाह में अनन्तानुबन्धी का प्रवाह मंद हो जाता है, परन्तु मिथ्यात्व तो अक्षुण्ण रहता है और अनन्तानुबन्धी के बिना मिथ्यात्व टिक ही नहीं सकता। जब सादिसपर्यवसित सम्यक्त्व छूट जाता है, तो सब से पहले अनन्तानुबन्धी की चोकड़ी सिर उठा कर खड़ी होती है (गुणस्थान २ में) और उसके बाद (उत्कृष्ट चहूँ आवलिका में) मिथ्यात्व के कारागार में आत्मा पहुँच जाती है।

अनन्तानुबन्धी की परिभाषा करते हुए स्थानांगसूत्र ४-१ में टीकाकार श्री अभयदेवमूरिजी बतलाते हैं कि—

“अणंताणुबन्धी—अनन्तानुबन्धिन्—पुं. अनंतं संसारं भवमनुबध्नाति अविच्छिन्नं करोतीत्येवंशीलोऽनन्तानुबन्धो यस्येत्यनन्तानुबन्धी। सम्यग्दर्शन सह-

और उग्र कपायी होने का प्रसंग ही नहीं आता। वे एकदम शान्त होते हैं। उनकी शुक्ल-लेश्या भी नीचे के वैमानिक देवों से अधिक उज्ज्वल और प्रशस्त होती है, किन्तु उनमें भी प्रथम-गुणस्थानी अनन्तानुबन्धी के पात्र हैं।

छठे नरक के नैरयिक कृष्ण-लेश्या वाले हैं और सातवें के उग्रतम कृष्णलेश्या वाले। किन्तु इनमें भी अनन्तानुबन्धी के उदय से वंचित चतुर्थगुणस्थानी सम्यग्दृष्टि भी हैं। जो जीव अप्रत्याक्ष्यानी कपाय के उदय वाले हैं उनके भी क्रोधादि चारों कपाय होती है और उग्र भी होती है। दशाश्रुतस्कन्ध अ. ६ के आस्तिक सम्यग्दृष्टि का वर्णन इस बात को स्पष्ट करता है। वहाँ बताया हुआ सम्यग्दृष्टि क्रूर है, अत्यन्त क्रोधी है, छोटे-से अपराध का भारी दण्ड देने वाला है और अपने कुकृत्य के फल स्वरूप नरक में जाने योग्य है, फिर भी अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित, अप्रत्याक्ष्यानी कपाय के तीव्र उदय वाले हैं।

जीवों को परिणति विभिन्न प्रकार की है। कई गुण होते हैं कि समझते मग्न कुछ हैं, योग्यायोग्य, हानिनाश, पुण्य-पाप और हिताहित का विचार भी करते हैं। परन्तु उग्र उदय-भाव का जोर होता है, जो उग्र हो जाने है। उग्र समय में अपने को सम्भाल नहीं सकते। उदयभाव के कारण ही सम्यग्दृष्टि जीव छठे नरक तक कृष्णलेश्या और सम्यग्दृष्टि गुण ना सक्त हैं (भगवती १३-१) इनके अनन्तानुबन्धी के उदय

जाता है । उसे देर-गौर नष्ट होना ही पड़ता है ।

इसलिए आत्म-सौधक, आत्मार्थी का कर्तव्य है कि मित्यात्म एवं अनन्तानुबन्धी कर्माय को नष्ट करने के लिए जिनेश्वर भगवंत के निर्णय-प्रवचन पर दृढ़ीभूत-अटूट श्रद्धा रख कर यथाशक्ति आराधना करता रहे । यही इस महापाश से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है ।

रघुनाथ पटेल की छाछ

एक छोटा-सा गाँव था—सो सवा-सो घरों का अधिकतर लोग कृपक थे, कुछ मजदूर और बढ़ई-लुहार आदि रघुनाथ पटेल वहाँ के मुखिया थे । घर के सुखी-सम्पन्न और प्रतिष्ठित । हृदय के उदार मिलनसार और अतिथि-सत्कार की रुचि वाले । अच्छी उपजाऊ भूमि के स्वामी । गोष्ठ में गायों-भैसों का झुण्ड और पर्याप्त दूध-दही-घृत । गाँव के कुछ अन्य लोगों के भी दूध होता था, परन्तु रघुनाथ पटेल के सिवाय सभी निकट के नगर में अपना दूध बेच देते थे । एक रघुनाथ पटेल ही ऐसे थे जो दूध नहीं बेचते, घृत बना कर बेचते थे और छाछ गाँव के लोगों में वितरण करते थे । लोगों की छाछ

एक ही है—“परम वीतराग सर्वज्ञसर्वदर्शी जिनेश्वर भगवंत आदि देव”—“धम्माणं कासवोमुहं” (उत्तरा. २५) इस अवसर्पिणी के आदि तीर्थंकर भगवान् काश्यप श्री आदिनाथजी हैं। उनके पूर्व अकर्मभूमि जैसी स्थिति थी। भगवान् ऋषभ-देवजी इस अवसर्पिणी काल के प्रथम महाराजा, प्रथम श्रमण, प्रथम सर्वज्ञसर्वदर्शी और प्रथम तीर्थंकर हुए। उन जिनेश्वर भगवंत ने धर्मोपदेश दिया। उनकी वीतराग वाणी रूपी प्रवचन गंगा प्रवाहित हुई, जिसका पान कर के असंख्य आत्माएँ पवित्र हो कर, अनन्त जीवन पा गईं। वह प्रवचन-प्रवाह विभिन्न प्रकार की भूमि में पहुँच कर विभिन्न वर्ण-गन्ध-रस स्पर्श के मिश्रण से—अच्छे-बुरे संयोग से बदलती-पलटती रूपान्तरित रसान्तरित, गन्धान्तरित हो गई। इस प्रकार विभिन्न मत-मतान्तरों में जो क्वचित् अहिंसा-सत्यादि की कुछ बातें सुनाई देती है, वे सभी—रघुनाथ पटेल की छाछ के समान—जिनेश्वर भगवंत द्वारा प्रसारित निर्ग्रन्थ-प्रवचन की ही है। शेष सब दूसरों की अपनी मिलावट है।”

संत वहाँ से विहार कर आगे पधारे, जहाँ श्रमणों-पासकों की अच्छी संख्या थी। संतों के मन में छाछ के निमित्त से गुरुदेव से मिले हुए तत्त्वबोध पर चिन्तन चल रहा था। प्रतिक्रमण के पश्चात् एक शिष्य ने पूछा;—

“गुरुदेव ! रघुनाथ पटेल की छाछ अन्य घरों में जा कर पानी आदि से मिश्रित हो गई, फिर भी वह पी जाती

हो, और धुनी तापने तथा यज्ञादि में असंख्य स्थावर ही नहीं। वसजीव भी भस्म होते रहते हों, खान-पान, स्नान-मंजन एवं गमनागमन सभी सदाप ही, हाथी-घोड़े पर चढ़ते हों, रात्रि भोजन भी चलता हो, धुमपान आदि सदाप जीवन अपने-प्राप दूसरी कसौटी के लिये भी अयोग्य है।

अन्यमतों की अपेक्षा बौद्ध-धर्मी अपने को विशेष अहिंसक बतलाते हैं, परन्तु स्थावरकाय जीवों की यतना का विवेक तो वहाँ भी नहीं है, तथा अनेक प्रकार के सावधकर्म एवं आरम्भ वे करते हैं और उनके आराध्य, भक्त का न्योता मान कर अपने संकड़ों साधुओं के साथ एक ही घर भोजन करने जाते थे। उनके लिये पशु को मार कर मांस पकाया जाता था और वे खाते थे। वे भी इस कसौटी से अयोग्य टहरते हैं।

तत्त्ववाद—अंतिम ताप रूपी कसौटी तत्त्ववाद है। जीव तत्त्व को मानने के साथ जीवों का पृथक्त्व (अनंत जीव-द्रव्य होना) कथंचित् नित्य, कथंचित् अनित्य, कर्म का कर्ता, भोक्ता, विभावदशा के कारण विभिन्न गतियों में भटकने वाला और धर्मसाधना से मुक्ति प्राप्त कर शाश्वत सुखी होने वाला जिन शास्त्रों में माना हों, वे इस कसौटी से भी शुद्ध ही प्रमाणित होते हैं।

जीव-तत्त्व को मानते हुए भी जो संसारभर में केवल एक ही आत्मा मानते हों—विभिन्न असंख्य शरीरों में मात्र

अन्य गति के योग्य नारक-पशु देव आदि रूप गति एवं शरीर का परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार आत्मा का 'परिणामी नित्य' होना प्रत्यक्ष है। आत्म-द्रव्य नित्य होते हुए भी पूर्वपर्याय—अवस्था—नष्ट होती और नई अवस्था उत्पन्न होती है। इस प्रकार द्रव्य-दृष्टि से आत्मा नित्य होते हुए भी पर्याय दृष्टि से परिवर्तनशील है—उत्पाद-व्यय युक्त है।

क्षणिकवादी का तत्त्ववाद भी अनुपयुक्त है। पर्यायों में परिवर्तन होते हुए भी आत्मा नित्य है। जो बालक है, वही युवा और वृद्ध होता है—दूसरा नहीं। जो पाप-पुण्य करता है, वही उसका फल भोगता है। करने वाला करते ही नष्ट हो गया और भोगने वाला कोई दूसरा ही हो, ऐसा नहीं होता। अतएव क्षणिकवादी का तत्त्ववाद भी कसौटी पर चढ़ने योग्य नहीं है।”

“उपरोक्त सभी कसौटियों से जिनधर्म ही सत्य प्रमाणित होता है। इसमें सन्देह नहीं होना चाहिये”—आचार्य प्रवर श्री गुणचन्द्रजी स्वामी ने समाधान किया।

शिष्य संतुष्ट हुआ। उपस्थित श्रावकगण की धर्म श्रद्धा दृढ़ हुई।



शैशव अवस्था की चर्या ओर होती है, तो किशोरावस्था की चेष्टा कुछ ओर होती है। इसी प्रकार युवावस्था, प्रौढ़ावस्था वृद्धावस्था की रुचि, कार्यकलाप और परिणति क्रमशः पलटती रहती है। गृहस्थावस्था की परिणति, श्रमण अवस्था में नहीं रहती और वीतराग बनने पर तो दशा ही अनूठी—अपूर्व बन जाती है।

जिनेश्वर भगवन्तों का समस्त जीवन ही लोकोत्तम होता है। उनकी बाल्यावस्था की चेष्टाएँ, अन्य सभी बालकों से निराली तथा उच्च प्रकार की होती है। इसी प्रकार यौवन-काल एवं गृहस्थ जीवन भी उच्च होता है और संयमी जीवन तो एकदम निर्दोष एवं पवित्र होता है। वे पूर्णतया निस्संग, एकाकी और असंयोगी होते हैं। इस श्रमण जीवन में वे संसारियों से सम्बन्धित नहीं रहते, न संसारियों के जात-भात, लेन-देन, सम्पन्नता-विपन्नता और सुख-दुःख के भौतिक उपाय पर चिन्तन ही करते हैं। वीतराग सर्वज्ञ होने के पश्चात् ही वे धर्मोपदेश देते हैं। धर्मोपदेश में आत्मा को राग-द्वेष, विषय-वासना एवं कर्मबन्ध से रहित हो कर शाश्वत अनन्तमुख प्राप्त करने का उपदेश देते हैं। यही प्रवृत्ति सहज रूप से होती रहती है। वे न तो राजनीति का उपदेश करते हैं, न सामाजिकता का। उनका समस्त त्यागी-जीवन संसार की हलचल, बादविवाद, ऊँचनीच, सम्पन्नता-विपन्नता और सुख-दुःख से भलिप्त, पृथक् एवं निरपेक्ष रहता है। वे संसार से भलिप्त

को 'धर्म—जिनधर्म'—कहना असत्य है, झूठ है।

कोई यों भी कहते हैं कि "भ. रिषभदेवजी ने सुनन्दा के साथ पुनर्विवाह किया था।" यह कथन भी सर्वथा मिथ्या है। सुनन्दा कुमारिका थी, अक्षत कीमार्थ युक्त थी। न तब वह विधवा थी और न परित्यक्ता ही। उसका किसी से सम्बन्ध या संभोग हुआ ही नहीं था। उसका सहजात बालक अपने वचपन में ही मर गया था। उसे विधवा मानना सरासर झूठ है और अज्ञान, कुश्रद्धा तथा मोहोदय का कुपरिणाम है।

कई कहते हैं—भगवान् अछूतों की दशा देख कर तिलमिला उठे। उन्होंने समाज-सुधार का बीड़ा उठाया और जोर-शोर से कहा—“कम्मुणा वंभणोहोई.....सुद्धो हवइ कम्मुणा”। यह एक सिद्धांत की बात है। इसका तात्पर्य यह तो नहीं हो सकता कि भगवान् ने अछूतोद्धार का बीड़ा उठा कर समाज को बदलने में जुट गये? इसी प्रकार 'स्त्री-वर्ग की दुर्दशा देख कर भगवान् ने विद्रोह कर दिया'—यह कथन भी निराधार और मिथ्या है।

इस प्रकार जितने भी कुप्रचार होते हैं, वे मिथ्या हैं और अनजान लोगों को भ्रम में डाल कर पथ-भ्रष्ट करने के लिये होते हैं। ऐसे अन्यथा-वादियों से सावधान रहना चाहिए।

भगवान् के जन्मकल्याणक पर इस प्रकार के जितने भी भ्रम फैलाये गये हैं, उनको मिथ्या मान कर कुश्रद्धा रूपी पाप से अपनी आत्मा की रक्षा करनी चाहिये।

सन्मति शब्द का कितना भी महान् अर्थ क्यों न हो, वह केवल ज्ञान की विराटता को अपने में नहीं समेट सकता। केवल ज्ञान के लिए सन्मति नाम छोटा ही पड़ेगा, ओछा ही रहेगा। वह केवल-ज्ञानी को महानता व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सकता। जिनकी वाणी एवं दर्शन ने अनेकों की शंकाएँ समाप्त की हों, अनेकों को सन्मार्ग दिखाया हो, सत्पथ में लगाया हो, उनकी महानता को किसी एक की शंका को समाप्त करने वाली घटना कुछ विशेष व्यक्त नहीं कर सकती।

वढ़ते तो अपूर्ण हैं, जो पूर्णता को प्राप्त हो चुका हो, उसे 'वर्द्धमान' कहना कहाँ तक सार्थक हो सकता है। इसी प्रकार महावीर की वीरता को साँप और हाथी वाली घटनाओं से नापना कहाँ तक सम्भव है, यह एक विचारने की बात है।

यद्यपि महावीर के जीवन सम्बन्धी उक्त घटनायें शास्त्रों में वर्णित हैं, तथापि ये बालक वर्द्धमान को वृद्धिगत बताती हैं, भगवान् महावीर को नहीं। साँप से न उरना बालक वर्द्धमान के लिए गौरव की बात हो सकती है, हाथी को बश में करना राजकुमार वर्द्धमान के लिए प्रशंसनीय कार्य हो सकता है, भगवान् महावीर के लिए नहीं। आचार्यों ने उन्हें यथास्थान ही इंगित किया है। वन विहारी पूर्ण अभय को प्राप्त महावीर एवं पूर्ण धीनरागों सर्वस्वातंत्र्य के उद्घोषक तीर्थंकर भगवान् महावीर के लिए साँप से न उरना, हाथी को कान में रक्ता क्या महत्त्व रखते हैं ?

क्षेत्र में पर को जीता जाता है और धर्मक्षेत्र में स्वयं को । युद्धक्षेत्र में पर को मारा जाता है और धर्मक्षेत्र में अपने विकारों को ।

महावीर की वीरता में दौड़-धूप नहीं, उछलकूद नहीं, मारकाट नहीं, हाहाकार नहीं, अनन्त शान्ति है । उनके व्यवित्व में वैभव की नहीं, वीतराग-विज्ञान की विराटता है ।

एक बात यह भी तो है कि दुर्घटनाएँ या तो पाप के उदय से घटती है या पाप-भाव के कारण । जिसके जीवन में न पाप का उदय हो न पाप-भाव ही, तो फिर दुर्घटनाएँ कैसे घटेगीं, क्यों घटेगीं । अनिष्ट-संयोग पाप के उदय के बिना सम्भव नहीं है, तथा वैभव और भोगों में उल्लास पाप भाव के बिना असम्भव है । भोग के भावरूप पाप-भाव के सद्भाव में घटने वाली घटनाओं में शादी एक ऐसी दुर्घटना है जिसके घट जाने पर दुर्घटनाओं का एक, कभी न समाप्त होने वाला सिलसिला आरम्भ हो जाता है । सोभाग्य से महावीर के जीवन में यह दुर्घटना न घट सकी ^१ । एक कारण यह भी है कि उनका जीवन घटना प्रधान नहीं है ।

लोक कहते हैं कि वचपन में किसके साथ क्या नहीं घटता, किसके घुटने नहीं फूटते, किसके दाँत नहीं टूटते ? महावीर के साथ भी निश्चित रूप से यह सब कुछ घटा ही

^१ यह उल्लेख दिगम्बर मान्यता के अनुसार है । श्वेताम्बर परम्परा महावीर को विवाहित मानती है — सम्पादक जिनवाणी

मोक्ष था । उनका भाग विद्रोहपूर्ण न था । उनके भाग और भाग के कारणों को दूसरों में मानना महावीर के भाग सम्मान है । वे 'न काहं मं शस्ते, न काहं मं वेद' के दास्य पत्र बने थे ।

मोक्षयोग्य पर नलन मल विरागी महावीर को समझने के लिए उनके अन्तर में झाँकना होगा । उनका वैराग्य देश-काल की परिस्थितियों के कारण उत्पन्न नहीं हुआ था । उनके कारण, उनके अन्तर में विद्यमान थे । उनका विराग परोपजीवी नहीं था । जो वैराग्य किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होता है, वह क्षण-जीवी होता है । परिस्थितियों के बदलते ही, उसका समाप्त हो जाना सम्भव है ।

यदि देश-काल की परिस्थितियाँ महावीर के अनुकूल होती तो, क्या वे वैराग्य धारण न करते ? गृहस्थी बसाते, राज करते ? नहीं, कदापि नहीं और परिस्थितियाँ उनके प्रतिकूल थीं हीं कब ? तोर्यंकर महान् पुण्यशाली महापुरुष होते हैं । अतः परिस्थितियों का प्रतिकूल होना सम्भव नहीं था ।

वैराग्य या विराग, राग के अभाव का नाम है, विद्रोह का नाम नहीं । वे वैरागी राग के अभाव के कारण बने थे, न कि विद्रोह के कारण । महावीर वैरागी राजकुमार थे, न कि विद्रोही । महावीर जैसे अद्रोही महामानव में विद्रोह खोज लेना अभूतपूर्व खोज बुद्धि का परिणाम है । बालू में से तेल निकाल लेने जैसा यत्न है ।

संघ के प्रकाशन

	मूल्य
१ मोक्षमार्ग ग्रंथ	अप्राप्य
२ भगवती सूत्र भाग १	अप्राप्य
३ भगवती सूत्र भाग २	"
४ भगवती सूत्र भाग ३	"
५ भगवती सूत्र भाग ४	५-००
६ भगवती सूत्र भाग ५	५-००
७ भगवती सूत्र भाग ६	५-००
८ भगवती सूत्र भाग ७	७-००
९ उत्तराध्ययन सूत्र	५-००
१० उववाइय सुत्त	२-००
११ जैन स्वाध्यायमाला	अप्राप्य
१२ दशवेकालिक सूत्र	१-५०
१३ सिद्धस्तुति	०-७५
१४ स्त्री-प्रधान धर्म	अप्राप्य
१५ सुखविपाक सूत्र	०-२०
१६ कर्म-प्रकृति	०-१६
१७ सामायिक सूत्र	०-१३
१८ सूयगडांग सूत्र	अप्राप्य
१९ विनयचंद चौबीसी	०-४०
२० नन्दी सूत्र	अप्राप्य
२१ आलोचना पंचक	०-२०
२२ संसार-तरणिका	अप्राप्य
२३ सम्यक्त्व-विमर्श (हिन्दी)	"
२४ जीव-घड़ा	०-२०



